आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-१९ * अंक-१० * जून-२०२५

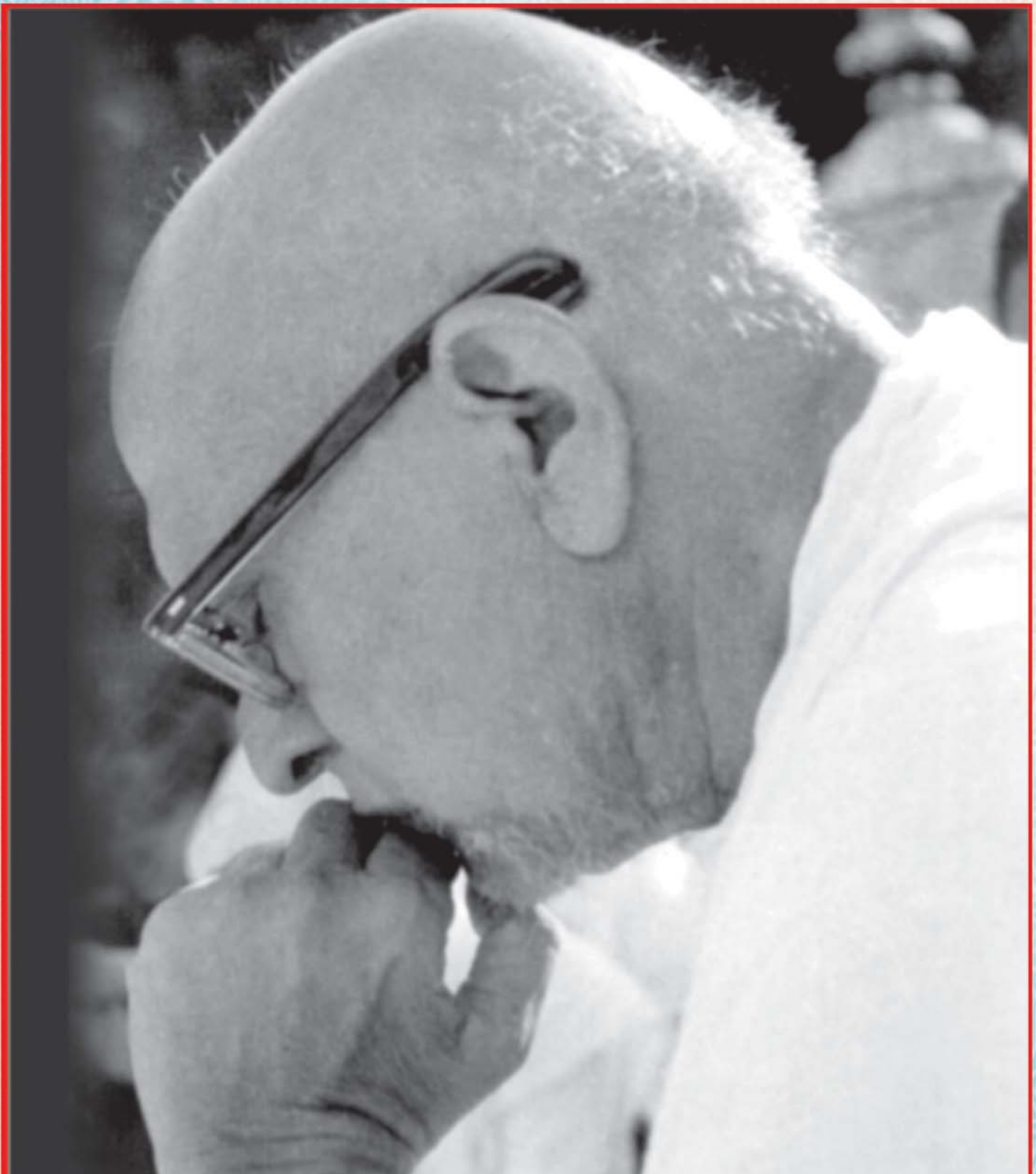

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

● जीवको क्षायिकभावके स्थान नहीं है, क्षयोपशमभावके स्थान नहीं है, औदयकभावके स्थान नहीं है व उपशमभावके स्थान नहीं है ।९७।

(श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, नियमसार, गाथा-४१)

● नवतत्त्वोंमें जो यह स्वसंवेदन प्रत्यक्षका विषय चैतन्यात्मक और जीव संज्ञावाला है, वह मैं उपादेय हूँ तथा यह मेरेसे भिन्न पौद्‌गलिक रागादिभाव सब त्याज्य हैं।९८।

(श्री राजमल्लजी, पंचाध्यायी, भाग-२, गाथा-४५७)

● शरीर और आत्मा दोनोंको एक माननेवाले मोहीजीवों द्वारा इन गुणस्थानोंको जीव कहनेमें आता है। परन्तु भेदज्ञानमें निपुण विवेकीजनों द्वारा नहीं, विवेकीजीव उनको पुद्‌गल अजीव बताते हैं।९९।(श्री अमितगति आचार्य, योगसार, अधिकार-२, श्लोक-३८)

● जो वर्णादिक अथवा रागमोहादिक कहे हैं वे सब इस पुरुषसे (आत्मासे) भिन्न हैं इसलिये अन्तर्दृष्टि द्वारा देखनेवालेको यह सब दिखाई नहीं देते, मात्र एक सर्वोपरि तत्त्व ही दिखाई देता है, केवल एक चैतन्यभावस्वरूप अभेदरूप आत्मा ही दिखाई देता है ।१००।

(श्री अमृतचंद्राचार्यदेव समयसार-टीका, कलश-३७)

● जिस प्रकार लोकके अग्रभागमें सिद्ध भगवंत अशरीरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय, निर्मल और विशुद्धात्मा (विशुद्ध स्वरूपी) हैं। उसी प्रकार संसारमें (सर्व) जीव जानना ।१०१।

(श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, नियमसार, गाथा-४८)

● जिस प्रकार दर्पणमें जो मयूरका प्रतिबिम्ब पड़ता है तो वह प्रतिबिम्ब वास्तविक मयूर नहीं है, यदि वह वास्तविक हो तब तो प्रत्यक्ष मयूरके समान प्रत्यक्ष होना चाहिये, परन्तु दर्पणमें वह प्रत्यक्ष नहीं होता, मात्र उसका प्रतिबिम्ब ही जाननेमें आता है। उसी प्रकार जीवादि नवतत्त्व, जीवकी नौ अवस्थायें हैं परन्तु वे वास्तविक, त्रैकालिक जीवस्वरूप नहीं हैं। जीवादि नवतत्त्व जीवकी अवस्थायें हैं परन्तु वे शुद्ध जीवद्रव्य नहीं हैं ।१०२।

(श्री राजमल्लजी, पंचाध्यायी, भाग-२, गाथा-१६८ का भावार्थ)

● शुद्धनिश्चयनयसे देखा जाय तो यह आत्मा एक ही चैतन्य है और इस अखंड पदार्थमें अनेक दूसरे विकल्पोंको उठानेका स्थान नहीं है कि मैं देव हूँ या नारकी हूँ इत्यादि ।१०३।

(श्री पद्मनंदी आचार्य, पद्मनंदी पंचविंशति, एकत्वसप्तति, श्लोक-१५)

वर्ष-19
अंक-9

वि. संवत 2081
May
A.D. 2025

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

परमागम श्री प्रवचनसार पर

(गाथा ६३-६४ के प्रवचनमेंसे)

बाह्य पदार्थसे संसारसुखका निषेध

वास्तवमें इस आत्माको संसार अवस्थामें संसारके सुखके लिये शरीर साधन नहीं है। क्योंकि जैसे मदिरासे मत्त हुआ मनुष्य जैसे-तैसे वर्तता है वैसे परपदार्थ मुझे इष्ट है ऐसे गाढ मिथ्यात्वके वश होकर, स्वयंके ज्ञातादृष्टा स्वभावको भूलकर भावइद्रियके द्वारा, अज्ञानी जीव अयोग्य परिणतिका अनुभव कर रहा है।

संसारके पदार्थोंमें मकान, कुटुम्ब आदिमें अज्ञानी सुख मानता है वह पापभाव है, उस पापभावमें शरीर कारण नहीं है; दया, दानके शुभभाव करता है वह पुण्यभाव है। उसमें शरीरकी कोई क्रिया कारण नहीं है और ज्ञानीको जो धर्मदशा उत्पन्न होती है वह बाह्यकारण अथवा शरीरके कारणसे होती नहीं है। धर्ममें शरीर कारण नहीं है।

पापभाव, पुण्यभाव या धर्मभाव किसीमें भी शरीर कारण नहीं है ऐसा निश्चित होता है तो फिर बाह्य पदार्थ कि जो शरीरसे बिलकुल भिन्न हैं वह कारण होता है ऐसा कदापि बनता नहीं है। स्त्री, पुत्र वह पापके कारण नहीं, पैसा आदिका दान वह पुण्यका कारण नहीं और देव-गुरु-शास्त्र वह धर्मका कारण कदापि बन सकता नहीं है। शरीरसे बिलकुल पृथक् पदार्थों पुण्य-पाप तथा धर्ममें कारण हो यह बात अज्ञानीओंने मान रखी है।

श्री धर्मनाथ जिन-स्तुति

प्रातिहारज विभव आपके राजती,
देहसे भी नहीं रागता छाजती;

श्री स्वयंभू-स्तोत्र

अज्ञानी जीव परपदार्थ और परकी क्रियामें सुखबुद्धि करके, इन्द्रियोंकी रुचि करके स्वयं विकाररूप परिणमित हुआ है, वह चाहे त्यागी हो तदपि जिसकी रुचि परसे सुखबुद्धि माननेकी है वह तो मिथ्यात्वरूप हो गया है अर्थात् पर्यायबुद्धि है। ऐसा जीव ज्ञातादृष्टा, सुख, आनंद स्वरूप ऐसा स्वयंका स्वभाव भूल गया है और स्वभावका आश्रय करता नहीं है, इसलिये उसके ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्यकी परमशुद्धता रुक गई है। हीन हो गई है। यह हीनदशा स्वयं स्वयंके कारणसे हुई है। कोई कर्मके उदयको लेकर हुई नहीं है।

ज्ञान, दर्शन, वीर्य जो अखंड ज्ञाता आत्माकी ओर झुकना चाहिये उस ओर नहीं झुका और बाह्यमें ठीक-अठीकमें ठहर गया है वह ही संसारसुखका निश्चयकारण है। शाता वेदनीयका उदय आया इसलिये सुख हुआ। शरीरके कारण सुख हुआ, अनुकूल पदार्थों, पुत्र आदि थे तो संसारका सुख भोगा यह बातका तद्दन निषेध किया गया है। उसके कारण संसारका सुख है ही नहीं।

अज्ञानी जीव स्वयं ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सुखका पिंड अभेद, अंशी पूर्ण है, उसकी रुचि छोड़कर अंशमें हीनदशामें रुक गया है और इन्द्रियोंकी ओर झुकता है वह अंशबुद्धि ही संसारके सुखका कारण है। (१) लक्ष्मी, कुटुम्ब, मकान वह संसारसुखका कारण नहीं है। (२) शरीर और पांच इन्द्रियाँ वह संसारसुखका कारण नहीं है। (३) शातावेदनीय कर्मका उदय वह संसारसुखका कारण नहीं है। आत्माका शुद्ध स्वभाव वह संसारसुखका कारण नहीं है। मात्र ज्ञान, दर्शन, वीर्यमें रुकी हुई पर्याय वही संसारसुखका कारण है।

वर्तमान हीन पर्याय ही कारण और वर्तमान पर्यायमें हुआ संसारसुख वह ही उसका कार्य है। कारण कार्य वर्तमान पर्याय स्वयं ही है। आजकल कारण-कार्य-सम्बन्धमें बहुत भ्रांतियाँ चल रही है। यहाँ तो आचार्य भगवानने स्पष्ट कहा है कि स्वयंकी हीन पर्याय वह ही निश्चय कारण है। बाह्यका कोई भी पदार्थ कारण नहीं है।

इन्द्रियसुखका वास्तविक कारण हीन पर्यायरूप परिणमित हुआ आत्मा ही है। उसमें देह कारण नहीं है। सुखरूप परिणति और देह बिलकुल भिन्न है। दोनोंमें अत्यंत अभाव है, इसलिये संसारसुखका कारण शरीर है यह बात पूर्णरूपसे मिथ्या ठहरती है। निश्चयसे दोनोंको कारण-कार्यपना पूर्णरूपसे नहीं है। यह ज्ञानतत्त्व अधिकार है। यथार्थ ज्ञान करते हैं। पर्यायका ज्ञान करके पर्यायबुद्धिका निषेध कराते है और स्वभावबुद्धि कराते है।

देव मानव सुहित मोक्षमग कह दिया,
होय शासनफलं यह न चित्तमें दिया ।७३।

आत्माका सुख स्वभाव है, उसका साधन आत्मा स्वयं है, उसका भान नहीं होनेके कारण संसारी जीव कल्पना उपस्थित करता है वह ही संसारके सुखका कारण है। देवमें वैक्रियिक शरीर सुखका कारण नहीं और नरकमें वैक्रियिक शरीर वह दुःखका कारण नहीं। वहाँ पर भी जीवकी कल्पना ही सुख-दुःखका कारण है ऐसा बताते है।

आत्मा और शरीर दोनों भिन्न पदार्थ है, दोनोंमें अत्यंत अभाव है, अभावरूप वस्तु आत्माको सुख-दुःख दे सकती नहीं है। अज्ञानी जीव स्वयंके अज्ञानके कारण स्पर्श, रस, गंध, वर्णको वश होनेकी वृत्ति करता है, विषय जीवको वश करते नहीं है। स्वर्गके अनुकूल संयोगों और नरकके प्रतिकूल संयोगों जीवको अपने वश करते नहीं है। लेकिन स्वयं सुख-दुःख मानकर उसके आधिन हुआ ऐसा मानता है।

देव और नारकीमें सम्यग्दृष्टि जीव होते है। वे स्वयंके स्वभावको सुखरूप मानते है और शरीर तथा सामग्रीमें सुख-दुःखकी कल्पना करते नहीं है। अल्प राग-द्वेष होता है वह स्वयंकी कमजोरीके कारण होता है उसे जानता है लेकिन शरीर तथा बाह्य सामग्रीको सुख-दुःखका कारण मानते नहीं है। इस परसे ऐसा निश्चित होता है कि वैक्रियिक शरीर सुख-दुःखका कारण नहीं है लेकिन अज्ञानी स्वयंके शरीरके साथ पर्यायबुद्धि करता है वह ही सुख-दुःखका कारण है।

जिस प्राणीकी दृष्टि अंधकारमें पदार्थको देख सकती है उसे दीपककी आवश्यकता नहीं है। अर्थात् दीपक कुछ भी करता नहीं है। वैसे आत्मा स्वयं सुख-दुःखरूप होता है उसमें विषय कुछ भी करता नहीं है—इस प्रकार दर्शाते है। भूत, सर्प, उल्लू, बिल्ली आदिमें अंधकारमें देखनेकी योग्यता है, उसे अंधकार बाधारूप नहीं है। उसे देखनेके लिये दीपककी अथवा प्रकाशकी आवश्यकता होती नहीं है, वैसे अज्ञानी जीव स्वयंकी कल्पनाके कारण सुखदुःखरूप होता है उसे विषय कुछ भी करते नहीं हैं।

अज्ञानी जीव मानता है कि पैसा हो तो वृद्धावस्थामें सहायरूप होते है, समय एक समान नहीं रहता है। एवं ''मृत सर्प भी कामका है''—ऐसी विपरीत मान्यता करता है और मकान, गहने, खाद्य पदार्थ, पैसा, पुत्र आदि सभी पदार्थोंको इष्ट साधन मानकर उसका आश्रय करता है और उसका संग्रह करता है। किन्तु वह सुखका कारण नहीं है। यह पदार्थ स्वयंको अनुकूल होकर प्राप्त हुए है ऐसी जो कल्पना उपस्थित करता है वह संसारसुखका

(शेष देखे पृष्ठ २२ पर)

आपकी मन वचन कायकी सब क्रिया,
होय इच्छा विना कर्मकृत यह क्रिया,

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

प्रवचन नं.-४०-४१ (गाथा-३६)

उपादानकी स्वतंत्रता

उपादानका कार्य उपादानसे ही होता है। निमित्त उसमें कोई बदलाव कर सकता नहीं है। अज्ञानीको कोई ज्ञानी बना सकता नहीं है और ज्ञानीको कोई अज्ञानी बना सकता नहीं है। तीन काल, तीन लोकमें प्रत्येक पदार्थ अपनी पर्यायमें परिणमित हो रहा है उसमें कोई अन्य पदार्थ मदद कर सकता नहीं है।

ऐसा होने पर भी, निश्चय प्रकट होता है तब व्यवहार आये बिना रहता नहीं है अर्थात् स्वयंका धर्म प्रकट होनेमें जो निमित्त हो ऐसे गुरु आदिके बहुमान, सेवा आदिके भाव आये बिना रहते नहीं, इसलिये व्यवहारसे गुरुकी सेवा करनी चाहिये।

अब शिष्य कहता है कि हे महाराज ! निमित्तका विच्छेद करके आपने तो सभी जिम्मेवारी हमारे पर डाल दी तो अब हमें धर्म प्रकट करनेके लिये अभ्यास किस प्रकार करना चाहिये वह तो कहो !

शिष्यके प्रश्नके उत्तरमें गुरु कहते है कि स्वयंके स्वरूपका बारम्बार विचार करना कि मेरा भगवान आत्मा शरीरसे भिन्न है, रागादि विकल्पसे भिन्न है और एक समयकी प्रकट पर्याय जितना भी मेरा आत्मा नहीं है।

आत्माके जिज्ञासुको अभ्यास करना चाहिये यह बात तो प्रसिद्ध ही है। अब उस अभ्यासके लिये स्थान कैसा होना चाहिये उसका उपदेशके साथ अनुभवका भी वर्णन करते हैं।

अब ३६वीं गाथामें कहते हैं कि :–

प्रथम जिसके चित्तमें क्षोभ (गुस्सा) हो वह आत्माका अभ्यास कर सकता नहीं। मैं ऐसा करूँ और ऐसा करूँ–ऐसे विकल्परूप क्षोभको मैं ज्ञानरूप आत्मा हूँ ऐसी दृढ़ताके द्वारा दूर करना यह प्रथम उपाय है।

हे मुने! ज्ञान विन है न तेरी क्रिया,
चित नहीं कर सकै भान अद्भुत क्रिया।७४।

मेरा आत्मा अखंड आनंदस्वरूप चैतन्यसूर्य है ऐसी आत्मामें दृष्टि स्थिर हो जानी चाहिये। दृष्टिमें आत्माका स्वीकार होना चाहिये। जिसको अभी भी स्त्रीमेंसे सुख मिलेगा, धनमेंसे सुख मिलेगा, लड्डुमेंसे सुख मिलेगा ऐसी दृष्टि हो उसकी दृष्टि आत्मामें स्थिर नहीं होती है। परपदार्थकी अनुकूलतामें जिसे ठीक लगे और प्रतिकूलतामें दुःख लगे उसके स्वभावमें आनंद ही है ऐसी बुद्धिका अभाव है।

शरीर निरोग हो तो मुझे सुख हो ऐसी मान्यता वह चित्तका क्षोभ है। बुद्धिका विपर्यास है। साधु होकर भी मुझे बाह्यकी सभी अनुकूलता हो, शिष्य अच्छे हो, ग्रीष्म ऋतुमें शीतलता मिले तो मेरा ध्यान ठीक हो ऐसी बुद्धि रखता है उसकी दृष्टि विपरीत है, वह आत्माका अभ्यास कर सकता नहीं है।

यहाँ तो जिसके चित्तमें क्षोभ न हो और दृष्टिमें विपरीतता न हो ऐसे जीव ही स्वयंके स्वभावकी साधना कर सकते है यह बात ली है।

आत्माके स्वरूपके अभ्यासके लिए स्थान एकान्त होता है, बाह्य कोलाहल रहित एकान्तस्थान अपने अन्तरमें विकल्पके कोलाहलसे रहित एकान्तस्थानमें योगीजन सावधानीपूर्वक आत्माके स्वरूपमें अभ्यास करते हैं। यहाँ लौकिक अभ्यास या शास्त्र-अभ्यासकी बात नहीं है। भगवान आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है, उसके अभ्यासकी बात है कि जिसके अभ्यासके फलमें केवलज्ञान प्रकट होता है।

प्रथम दृढ़ विश्वास होना चाहिये कि मैं ही केवलज्ञानका कंद हूँ और मैं मेरे स्वरूपकी एकाग्रताके अभ्यास द्वारा इस केवलज्ञानको प्राप्त कर सकता हूँ। उसमें मुझे सारी दुनियामें कोई भी प्रविष्ट कर सकता नहीं है और मदद भी कर सकता नहीं है।

देखो स्वयंके आत्माके स्वरूपका अभ्यास करनेको कहा है। अरिहंत, सिद्धके स्वरूपकी बात नहीं की। मनुष्यदेहमें करनेका कार्य तो एक ही है—स्वयंके स्वरूपका अभ्यास करना। दुनियाको इस तत्त्व समझानेका अभ्यास प्रथम कर लूँ यह बात नहीं है। स्वयंका अभ्यास करना वह ही मूल कार्य है। दुनिया यह माने या न माने, जाने या न जाने, उसके साथ मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसी दृष्टि होनी चाहिये।

भगवान ! तेरी चीज तो तेरे पास ही है न प्रभु ? तुझे तो स्वभावकी ओर दृष्टि करनेकी

आपने मानुषी भावको लांघकर,
देवगणसे महा पूज्यपन प्राप्त कर;

है। भगवान कहते है कि मेरी सन्मुख दृष्टि करनेसे तुझे तेरे स्वभावकी सन्मुखता नहीं होगी।

जिसके चित्तमें विक्षेप नहीं और रागादि विकल्प नहीं तथा हेय-उपादेय तत्त्वोंका जिसका स्वरूप गुरुने बतलाया है उसमें जिसकी बुद्धि निश्चल हो गई है ऐसा योगी आत्माका अभ्यास कर सकता है।

शिष्य हेय-उपादेय तत्त्वोंके दो भाग कर देता है कि राग, निमित्त आदि परपदार्थ मेरे आतमरामसे भिन्न है इसलिये हेय है, उपेक्षा करनेलायक है, लक्ष करनेयोग्य नहीं है और मेरे चिदानंद स्वरूपमें लक्ष करना वह उपादेय है, आदरणीय है ऐसी दृष्टि शिष्यने निश्चल की है। गुरुने हेय-उपादेय तत्त्वोंका स्वरूप बताया, तब शिष्यने यथार्थ भाव पकड लिया है। इसलिये उसे निमित्त या राग मुझे कोई मदद करेगा ऐसी शंका होती नहीं है।

एक समयमें ध्रुव चिद्‌घन परमस्वरूप निज परमात्मा ही साध्य है—साधनेयोग्य है—ध्यानमें लेने योग्य है ऐसे साध्यमें जो योगी कायोत्सर्ग आदि द्वारा लीन हुआ है वह वास्तवमें यथार्थ अभ्यास कर रहा है। प्रत्येकको चित्तको स्थिर करके, स्वभावकी दृष्टिपूर्वक ऐसा ध्यान करना वह ही कर्तव्य है।

सुलभ प्राप्त विषयोंमें भी धर्मीको निर्ममत्व

यह श्री इष्टोपदेश शास्त्र है। उसमें आत्माको हितकारी उपदेश क्या है उसकी बात चल रही है।

इस देहमें विद्यमान भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप है और यह देह, वाणी, मन आदि सबकुछ जड़ है और पुण्य-पापके भाव वह विकार है-दुःखरूप है। यह विकारीभाव और जड़पदार्थोंमेंसे जिसकी रुचि हट गई है और आत्माकी रुचि जागृत हुई है उसे अंतरस्वभावमें एकाग्र होनेकी भावना होती है। यह एकाग्रता किस प्रकार करते है उसकी बात यह गाथामें की है।

यहाँ तो सभी उत्तम-उत्तम प्रथम नंबरकी बातें हैं।

प्रथम तो आत्माकी पहिचान होने पर 'मैं आनंदस्वरूप हूँ' ऐसी आत्माकी रुचि, प्रीति और विश्वास आता है वहाँ पुण्य-पाप विकारीभाव और जड़ सामग्रीमें मेरा सुख तीन कालमें

हो महादेव आप, हे धरमनाथजी!
दीजिये मोक्षपद हाथ श्री साथजी।७५।

कदापि नहीं है ऐसा निश्चित हो जाता है। उसे आत्माकी रुचि अनुसार वीर्य आत्माकी ओर कार्य करता है।

प्रथम धर्मदृष्टि प्रकट होने पर 'मैं स्वयं ही अपना आधार हूँ, स्वयं ही मेरा शरणरूप हूँ और मैं ही उत्तम पदार्थ हूँ' ऐसा निश्चित हो जाता है। ऐसी धर्मदृष्टि बिनाका सबकुछ खाली है। क्रियाकांड, दया, दान, भक्तिमें हित है ऐसा माननेवाला, आत्मा अतीन्द्रिय अनाकुल आनंदस्वरूप है और उसमें ही मेरा हित है–ऐसा नहीं मान सकता है।

धर्मी जीवको आत्मामें ही सुख है ऐसी दृढ़ श्रद्धाके कारण अंतर एकाग्रता करनेमें किसी भी प्रकारका मनमें विक्षेप होता नहीं है कि परपदार्थ या रागमें सुख होगा !

हेय-उपादेय तत्त्वोंमें भी धर्मीकी बुद्धि निश्चल हो गई है। सर्वज्ञ भगवंतों, आचार्यों और आगमका यह उपदेश है कि हे जीव ! तेरे आत्मामें ही तेरा सुख है इसलिये उसे उपादेय कर ! आदर कर ! और रागादि दुःखरूप तत्त्व है इसलिये उसे हेय कर ! भगवानके ऐसा उपदेशको स्वीकार कर आत्माकी रुचि और दृष्टि करे तब ही भगवानका शरण लिया कहा जायेगा।

जैसे अज्ञानीको अनादिसे शरीर और रागादिमें अपनेपनकी रट लगी है। वैसे धर्मीको अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप निज आत्मा वह ही मैं ऐसी रट लगी है इसलिये एक आत्मा ही उपादेय और रागादि सर्व हेय है इस प्रकार उसकी बुद्धि निश्चल हो गई है।

धर्मी जीव कायोत्सर्गमें लीन होता है अर्थात् काया कहने पर शरीर, वाणी, मन तथा पुण्य-पापभाव उससे रहित निजानंद स्वरूप आत्मामें एकाकार होता है उसमें आत्मा जैसा है वैसा अंतरमें व्यवस्थित हो जाता है।

यह तो सम्यग्दृष्टिकी क्रिया कैसी होती है उसकी बात चल रही है। इष्टोपदेशमें गाथा तो मात्र ५१ ही है लेकिन जैन परमेश्वर वीतरागदेवने कही हुई वाणीका मख्खन इसमें भर दिया है। ऐसा हितकारी उपदेश पूज्यपादस्वामीने किया है। इसलिये शास्त्रका नाम ''इष्टोपदेश'' है और ऐसा भाव प्रकट करना वह हितकारी-इष्टभाव है। स्वयं भगवान आत्मामें ही जिसने योगको लगाया है, वीर्य लगाया है वह चाहे गृहस्थाश्रममें हो फिर भी उसे रागादि विकल्प सुहाते नहीं है–रुचते नहीं हैं। (क्रमशः) ✻

श्री शांतिनाथ जिन-स्तुति	परम प्रताप धर जु शांतिनाथ राज्य बहु किया, महान शत्रुको विनाश सर्व जन सुखी किया;

अध्यात्म संदेश

(रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

अन्तर्मुख मति-श्रुतकी अतीन्द्रिय ताकत

''तथा तुमने लिखा है कि–आत्मा अतीन्द्रिय है इसलिये अतीन्द्रिय द्वारा ही वह ग्राह्य हो सके। सो भाईजी ! मन अमूर्तिकका भी ग्रहण करता है क्योंकि मति-श्रुतज्ञानका विषय सर्व द्रव्य कहे हैं। तत्त्वार्थसूत्रमें कहा है कि–'मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु'।''

मति-श्रुतज्ञान तो परोक्ष हैं और इनमें अभी मनका अवलम्बन भी है, तब इनसे अतीन्द्रिय आत्मा कैसे जाना जाय ? तो प्रत्युत्तरमें कहते हैं कि भैया ! मति-श्रुतज्ञानमें भी अतीन्द्रिय आत्माको जाननेकी ताकत है। मूर्त-अमूर्त सभी द्रव्य मतिश्रुतज्ञानके विषय हैं। और आत्माको जानते समय मति-श्रुतज्ञानमें भी कथंचित् प्रत्यक्षपना हो जाता है, अतः इतने अंशमें इनमेंसे मनका व इन्द्रियका अवलम्बन छूट जाता है। इसलिये मति-श्रुतज्ञान भी स्वसन्मुख होकर आत्माको अच्छी तरह जान सकते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि इन्द्रियविषयोंकी ओर झुके हुए मति-श्रुतज्ञान अतीन्द्रिय आत्माको पकड़ नहीं सकते, परन्तु इन्द्रियोंसे व इन्द्रियविषयोंसे भिन्नता जानके, मैं तो ज्ञानस्वभाव हूँ–ऐसे अंतर्स्वभावकी ओर झुके हुए मति-श्रुतज्ञान अतीन्द्रिय आत्माको अच्छी तरहसे (स्पष्ट) जान लेते हैं।

अब, प्रत्यक्ष व परोक्षपना सम्यक्त्वमें नहीं परन्तु ज्ञानमें है–इस विषयका विस्तारसे स्पष्टीकरण करते हैं।

स्वानुभूतिका रंग चढ़े ऐसी बात
प्रत्यक्ष-परोक्षपना ज्ञानमें है, सम्यक्त्वमें नहीं

''और आपने प्रत्यक्ष-परोक्ष सम्बन्धी प्रश्न लिखा। परन्तु भाईजी, (सम्यक्त्वमें तो) प्रत्यक्ष-परोक्षरूप भेद नहीं है। चौथे गुणस्थानमें सिद्धसमान क्षायिकसम्यक्त्व हो जाता है। क्योंकि सम्यक्त्व तो केवल यथार्थ श्रद्धानरूप ही है और शुभाशुभ कार्य करते समय भी वह रहता है; इसलिये आपने जो लिखा कि 'निश्चयसम्यक्त्व प्रत्यक्ष और व्यवहारसम्यक्त्व

यतीश पद महान धार दयामूर्ति बन गअे,
आपहीसे आपके कुपाप सब शमन भअे।७६।

परोक्ष'–सो ऐसा नहीं है। सम्यक्त्वके तो तीन भेद है; उनमें उपशमसम्यक्त्व व क्षायिकसम्यक्त्व तो निर्मल हैं क्योंकि वे मिथ्यात्वके उदयसे रहित हैं, और क्षयोपशमसम्यक्त्व समल है। परन्तु इस सम्यक्त्वमें प्रत्यक्ष व परोक्ष ऐसा भेद तो नहीं है। क्षायिक सम्यक्त्वीको शुभाशुभरूप प्रवर्तते समय या स्वानुभवरूप प्रवर्तते समय सम्यक्त्वगुण तो सामान्य (एकसा) ही है; इसलिये सम्यक्त्वके तो प्रत्यक्ष-परोक्ष ऐसे भेद न मानना। परन्तु प्रमाणके प्रत्यक्ष-परोक्ष ऐसे भेद हैं।''

साधर्मीके प्रति प्रेमसे सम्बोधन करते लिखते है कि भाईजी ! सम्यग्दर्शनके प्रत्यक्ष-परोक्षके बारेमें आपने लिखा, परन्तु ऐसा भेद सम्यक्त्वमें नहीं है। सम्यक्त्व तो शुद्ध आत्माकी प्रतीतिरूप है। यह प्रतीति सिद्ध भगवानकी व तिर्यंच-सम्यग्दृष्टिको एकसी ही है। जैसे शुद्धात्माकी प्रतीति सिद्धभगवानके सम्यक्त्वमें है, चौथे गुणस्थानवाले सम्यग्दृष्टिको भी वैसे ही शुद्धात्माकी प्रतीति है, उसमें कुछ भी फर्क नहीं। सिद्ध भगवानका सम्यक्त्व प्रत्यक्ष व चौथे गुणस्थानवालेका परोक्ष ऐसा भेद नहीं है; अथवा स्वानुभवके समय सम्यक्त्व प्रत्यक्ष, और बाहर शुभाशुभमें उपयोग हो तब सम्यक्त्व परोक्ष, ऐसा भी नहीं है। शुभाशुभमें प्रवर्तता हो तब, या स्वानुभव द्वारा शुद्धोपयोगमें प्रवर्तता हो तब भी सम्यग्दृष्टिका सम्यक्त्व तो सामान्य वैसा का वैसा है; अर्थात् शुभाशुभके समय सम्यक्त्वमें कोई मलिनता आ गई और स्वानुभवके समय सम्यक्त्वमें कोई निर्मलता बढ़ गई–ऐसा नहीं है।

वाह, देखो, यह सम्यग्दर्शन व स्वानुभवकी चर्चा ! यह मूलभूत वस्तु है। स्वानुभव क्या चीज है इसकी पहिचान भी जीवोंको कठिन है। पहले वस्तुस्वरूपका यथार्थ निर्णय करे, जीव क्या है अजीव क्या है स्वभाव क्या परभाव क्या है—इनको बराबर पहिचानके बादमें मति-श्रुतज्ञानको अंतरमें ले जाकर स्वद्रव्यमें परिणामको एकाग्र करनेसे सम्यग्दर्शन व स्वानुभव होता है। जीव जब ऐसा अनुभव करे तब ही मोहकी गांठ टूटती है, और तब ही वह भगवानके मार्गमें आता है।

भाई ! यह तो सर्वज्ञका निर्ग्रन्थ मार्ग है। तूने यदि स्वानुभवके द्वारा मिथ्यात्वकी ग्रन्थि न तोडी तो निर्ग्रन्थ मार्गमें तू कैसे आया ? जन्ममरणकी ग्रन्थिको यदि न तोड़ दी तो निर्ग्रन्थ मार्गमें जन्म लेकर तूने क्या किया ? भाई ऐसा अवसर मिला है तो अब ऐसा उद्यम कर कि जिससे यह जन्म-मरणकी गाँठ टूटे और अल्पकालमें मुक्ति हो।

परम विशालचक्रसे जु सर्व शत्रु भयकरं,
नरेन्द्रके समूहको सुजीत चक्रधर वरं;

इसमें सम्यग्दर्शनका स्वरूप साथमें वह प्रकट करनेकी रीति भी आ जाती है। जिसको सम्यग्दर्शन प्रकट करना हो उसको क्या करना ?–सम्यग्दर्शनको कहाँ ढूंढना ?–कहाँ खोजना ?

✍ परमें शोधनेसे सम्यग्दर्शन नहीं मिल सकता।

✍ देहादिकी क्रियामें या शुभरागमें भी सम्यग्दर्शन नहीं मिल सकता।

✍ सम्यग्दर्शन तो आत्माके स्वभावका ही भाव है इसलिये आत्मामेंसे ही वह मिलता है।

✍ आत्मा आनंद व ज्ञानस्वरूप है, अन्तर्मुख होकर उसको निर्विकल्प प्रतीति करना सो सम्यग्दर्शन है।

✍ वह सम्यग्दर्शन मन व इन्द्रियोंसे पार निर्विकल्प आत्मप्रतीतिरूप है।

✍ उपयोग स्वमें हो या परमें, वह सम्यग्दर्शन एकसा रहता है।

✍ प्रत्यक्ष व परोक्ष ऐसा भेद सम्यग्दर्शनमें नहीं है।

✍ ज्ञान अंतर्मुख होने पर आत्माके निर्विकल्प आनंदका अनुभव होता है, और उसी समय 'यही मैं हूँ' ऐसी सम्यक् आत्मप्रतीति होती है वही सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन निर्विकल्प स्वानुभवमें प्रकट हुआ, परन्तु बादमें विकल्पके समय भी वह चला नहीं जाता। भ्रांति रहित सम्यक् आत्मप्रतीति धर्मीको सदैव रहा करती है।

✍ ऐसा सम्यग्दर्शन वह मोक्षका द्वार है; इसके द्वारा ही मोक्षके मार्गका उद्घाटन होता है; इसके लिये उद्यम करना यही हरेक मुमुक्षुका पहला काम है; और प्रत्येक मुमुक्षुसे यह हो सकता है।

अहा ! अभी सम्यग्दर्शनका स्वरूप बहुत स्पष्टतासे प्रसिद्धिमें आया है। यह बात इतनी सरस है कि यदि समझे तो अंतरमें जीवको स्वानुभूतिका रंग चढ़ जाय, और रागका रंग उड़ जाय। आत्माकी शुद्ध अनुभूति रागके रंगसे रहित है; ऐसी अनुभूतिका रंग जिसको नहीं वह रागके रंगमें रंग जाता है। हे जीव ! एकबार आत्मामेंसे रागके रंगको उतारके स्वानुभूतिका रंग चढ़ा दे।

हुअे यतीश आतमध्यान-चक्रको चलाईया,
अजेय मोह नाशके महाविराग पाईया ।७७।

एकबार भी स्वानुभूतिके द्वारा जिसने शुद्धात्माकी प्रतीति की उसको सम्यग्दर्शन हुआ, बादमें जब वह स्वानुभवमें हो तब उसकी प्रतीतिका जोर बढ़ जाय और बाहर शुभाशुभमें हो तब उसकी प्रतीति ढीली पड़ जाय–ऐसा नहीं है। एवं निर्विकल्प दशाके समय सम्यक्त्व प्रत्यक्ष व सविकल्पदशाके समय सम्यक्त्व परोक्ष–ऐसा प्रत्यक्ष-परोक्षपना भी सम्यक्त्वमें नहीं है। अथवा निर्विकल्पदशाके समय निश्चयसम्यक्त्व व सविकल्पदशाके समय अकेला व्यवहारसम्यक्त्व–ऐसा भी नहीं है। धर्मीको, सविकल्पदशा हो या निर्विकल्पदशा हो–दोनों समयमें, शुद्धात्माकी प्रतीतिरूप निश्चयसम्यक्त्व तो सततरूपसे बना रहता है। यदि निश्चयसम्यक्त्व न हो तो साधकपना ही न रहे, मोक्षमार्ग ही न रहे। हाँ, निश्चय भले किसीको औपशमिक हो, किसीको क्षायोपशमिक हो और किसीको क्षायिक हो; शुद्धात्माकी प्रतीति तो तीनोंमें एकसी है।

क्षायिकसम्यक्त्व तो सर्वथा निर्मल है; औपशमिक सम्यक्त्व भी वर्तमानमें तो क्षायिक जैसा निर्मल है परन्तु उस जीवको (निखरे हुए कादववाले पानीकी तरह) मूलसत्तामेंसे मिथ्यात्वकी प्रकृतिका अभी नाश नहीं हुआ; और क्षायोपशमिक सम्यक्त्वमें सम्यक्त्वको बाधा न पहुँचावे ऐसी तरहका सम्यक् मोहनीयप्रकृति सम्बन्धी विकार है। ये तीनों प्रकारके सम्यक्त्वमें शुद्धात्माकी प्रतीति वर्तती है। प्रतीतिकी अपेक्षासे तो सम्यग्दृष्टिको सिद्धसमान कहा है।

प्रश्न : चौथे गुणस्थानमें जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि है उसकी तो प्रतीति सिद्ध भगवान जैसी भले हो, परन्तु उपशम सम्यग्दृष्टिकी भी प्रतीति क्या सिद्ध भगवान जैसी है?

उत्तर : हाँ उपशम सम्यग्दृष्टिको प्रतीतिमें जो शुद्धात्मा आया है वह भी वैसा ही है–कि जैसा सिद्धभगवानकी प्रतीतिमें आया है। शुद्धात्माकी प्रतीति तीनों ही सम्यक्त्वींकी समान है, इसमें कोई अंतर नहीं है।

इस तरह सम्यग्दर्शनमें औपशमिक आदि तीन प्रकार है, अथवा निमित्त अपेक्षासे अधिगमज व निसर्गज ऐसे दो प्रकार है; परन्तु प्रत्यक्ष व परोक्ष ऐसे दो प्रकार सम्यग्दर्शनमें नहीं हैं , प्रत्यक्ष व परोक्ष ऐसा भेद तो प्रमाण-ज्ञानमें है, इसका विवेचन अब करेंगे।

(क्रमशः) ❋

राजसिंह राज्यकीय भोग या स्वतंत्र हो,
शोभते नृपोंके मध्य राज्य लक्ष्मीतंत्र हो;

मुक्तिका मार्ग

(सत्तास्वरूप पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन) (प्रवचन : ६)

अरहंत देवका सच्चा सेवक कैसा होता है?

जो पहले कुदेवादिको मानता था वह बहुत बड़ा दूषण था, उस दूषणको छोड़कर हर्षपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी भक्ति और विनय करता है तब गृहीतमिथ्यात्व छूटता है। अधिक संपत्तिशालीका बहुमान करना यह कोई गुण नहीं कहलाता, वहाँ तो पैसेकी रुचिका भाव है। धर्मकी रुचिवालेको अधिक धर्मवानका बहुमान आता है।

संसारमें लड़के लड़कीकी सगाई विवाह आदिके लिए कितनी चिन्ता करता है और उसमें कितने उत्साहसे काम करता है? इसीप्रकार हे भाई ! अरहन्तदेव सर्वज्ञ वीतराग भगवान परम पिता, स्वरूपके अन्नदाता, तीर्थके स्वामी, धर्मनायक, धर्मदाता, धर्मसागर, देवाधिदेवको यदि तू हितवांछक देवके रूपमें स्वीकार करता है तो हर्षपूर्वक आंतरिक उल्लासके साथ उनकी भक्ति पूजा प्रभावना इत्यादि करना चाहिये। ऐसा नहीं कि कोई दूसरा काम करनेको बारबार कहें तब करे, किन्तु अपने आप ही अन्तरंग हर्षपूर्वक धर्मप्रभावनाके काम करना चाहिए, कि अहो यह मेरा धन्य भाग्य है कि मुझे यह कार्य करनेका लाभ मिला है। भला, ऐसा सुअवसर कब मिलता है? जो सच्चे देव-गुरुकी हर्षपूर्वक भक्ति नहीं करता वह व्यवहारसे भी अरहन्तदेवका सेवक नहीं है अर्थात् वह बाह्य जैन भी नहीं है। जो अरहन्तका सेवक होता है वह धर्मका काम आने पर हर्षके मारे उछल जाता है और कहता है कि—अहो धन्य भाग्य है कि मुझे यह काम मिला। मेरा शरीर, मेरा मन, मेरा राग, मेरी बुद्धि, मेरा वचन और मेरा धन इत्यादि सब भगवान परमेश्वर देवाधिदेवकी प्रभावना भक्तिके लिये काम आये; देव-गुरु-धर्मके लिये हमारा तन, मन, धन उपयोगमें आये तो वह सब सफल है, उसीमें हमारा अहोभाग्य है। इसप्रकार व्यवहारसे जिनदेवादिकका सेवक होकर, विचारपूर्वक व्यवहार सम्यक्त्वके २५ दोषोंको नहीं लगाना चाहिये अर्थात् उन दोषोंका त्याग करना चाहिए। वे २५ दोष निम्नप्रकार हैं :—

(१) **जातिमद**—जातिका अभिमान नहीं करना चाहिये, किन्तु देव-गुरुका

पायके अर्हंत लक्ष्मी आपमें स्वतंत्र हो,
देव नर उदार सभा शोभते स्वतंत्र हो ।७८।

बहुमान करना चाहिए कि देव-गुरुसे बढ़कर जगतमें है ही कौन ? मैं तो उनका सेवक हूँ।

(२) लाभमद—धन इत्यादिका मद करना सो लाभमद है, लाभका अहंकार नहीं करना चाहिये।

(३) कुलमद—'हमारे कुलकी सात पीढ़ीयोंके सभी मनुष्य बड़े बड़े थे'। इसप्रकार घमण्ड करना सो कुलका मद है। अरहन्तके सेवकके कुलमद नहीं होता किन्तु वह विनयपूर्वक यह विचार करता है कि हमारे देव सर्वज्ञ और वीतराग हैं। हम तो अरहन्तोंके कुलके हैं।

(४) रूपमद–शरीरकी सुन्दरता घमण्ड करना सो रूपमद है। रूपका अहंकार न करके यह विचार करे कि शरीरकी सुन्दरता प्रकृतिकी देन है, वह रूप मेरा नहीं है। मेरा रूप तो चैतन्यमय है।

(५) तपमद—ज्यादा उपवासादि करके उसका अभिमान करना सो तपमद है। आप उपवासादि करनेसे अपनेको बड़ा समझ लें और बड़े-बड़े ज्ञानीको अपनेसे हीन समझें यह मिथ्यात्वकी तीव्रता है। जो अरहन्तभगवानका भक्त है, उसके ऐसा मद नहीं होता।

(६) बलमद—शरीरके बलका अभिमान करना सो बलमद है। ज्ञानीके शरीरबलका मद नहीं होता, वह विचार करता है कि अरे, बल किसका ? यह शरीर आत्माका है ही कब ?

(७) विद्यामद—विद्याका अभिमान करना सो विद्याका मद है। अरहन्तदेवका भक्त विद्याओंका अभिमान नहीं करता। चैतन्यविद्याको ही वह सर्वोत्कृष्ट समझता है।

(८) अधिकारमद—किसी प्रकारका लौकिक अधिकार मिलने पर उसका घमण्ड करना सो अधिकारमद है। बड़ा पद मिलना पूर्व पुण्यका फल है। हम प्रधान हैं, हम लक्षाधिपति हैं, हम समाजके मुखिया या अध्यक्ष हैं इस प्रकार पदवियोंका अहंकार नहीं करना चाहिए। आखिरकार त्रिलोकीनाथ अरहन्तदेवके सामने तो तू रंक ही है। अरहन्तदेवकी सौ सौ इन्द्र पूजा करते हैं और उनके चरणोंमें रत्नजड़ित मुकुटमय मस्तकको नमाते हैं, उन मुकुटोंके एक एक रत्नोंकी कीमत पर चक्रवर्तीका राज्य न्योछावर हो सकता है। इन्द्रके सिंहासनके नीचेके पत्थरका मूल्य अरबों रूपयोंसे अधिक होता है, ऐसी ऋद्धिके स्वामी ३२ लाख विमानोंके धनी इन्द्र भी अरहन्तदेवके पास नम्रता, भक्तिभाव और उल्लासपूर्वक बालककी तरह नाचने लगते हैं; और वही इन्द्र जब अपनी इन्द्रसभामें

> चक्रवर्ति पद नृपेन्द्र-चक्र हाथ जोडिया,
> यतीश पदमें दयार्द्र धर्मचक्र वश किया;

इन्द्रासन पर बैठता है तब हजारों देवोंसे सेवित सिंह जैसा प्रतापी गम्भीर बन जाता है। ऐसे प्रतापी इन्द्र भी जब भगवानकी पूजा करते हुए भक्तिभावसे नाच उठते हैं तब उनके सामने तेरे इस अधिकारकी कीमत ही क्या है ? इसलिए अधिकारका मद नहीं करना चाहिए। यहाँ तो अभी बाह्य जैनी कैसे हुआ जाता है इसकी बात है। यदि कोई आत्माको पहिचानकर अंतरंग जैनी बने तब तो वह अपूर्व है।

(९-११) कुगुरु-कुदेव-कुधर्मकी सेवा करना सो मूढ़ता है। जिनेन्द्रदेवके भक्तिके यह तीन मूढ़ताएँ नहीं होती। यहाँ पर किसीसे द्वेषभावकी कोई बात नहीं है किन्तु सत्-असत्का विवेक बताया है।

(१२-१९) शँका-कांक्षा-विचिकित्सा-मूढ़दृष्टि-अनुपगूहन, अस्थितिकरण, अवात्सल्य और अप्रभावना यह आठ दोष हैं; ये दोष जिनेन्द्रदेवके भक्तके नहीं होते।

संख्यासे सत्की गिनती नहीं होती किन्तु सत् तो सत्की परीक्षासे सत् है। लौकिक व्यवहारमें भी संख्याकी गणनाकी मुख्यता नहीं है। श्रीकृष्ण एक ही थे वे पद्मनाभके सैन्यके साथ अकेले ही लड़े थे और फिर भी उन्हें हरा दिया था, करोड़ों बकरोंके झुंडके लिए एक सिंह ही काफी है। वहाँ पर कोई यह शंका नहीं करता कि एक ही सिंह इतने सारे बकरोंको कैसे भगा देगा? इसीप्रकार जिनेन्द्रदेवका भक्त अन्यमतकी संख्या देखकर घबड़ाता नहीं कि जिस धर्मको अधिक मनुष्य मानते हैं वह धर्म सच्चा होगा कि जिसे थोड़े लोग मानते हैं वह सच्चा होगा ? वह तो परीक्षा करके सत्यका निश्चय करता है। देव-गुरु अथवा साधर्मीयोंके प्रति अरहन्तदेवका भक्त अरुचि नहीं करता किन्तु प्रीतिपूर्वक उनका आदर करता है।

(२०-२५) कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और उन तीनोंके सेवक यह छह अनायतन हैं। जिनेश्वरदेवका भक्त इनका आदर नहीं करता।

जो जीव ऊपर कहे गये पच्चीस दोषोंको विचारपूर्वक दूर कर देता है वही जन्म जरा और मरणको मिटानेमें निमित्तभूत जो परम वैद्य त्रिलोकीनाथ तीर्थंकरदेव हैं उनका भक्त कहलाता है। यहाँ पर पच्चीस दोषोंका त्याग 'विचारपूर्वक' करनेको कहा गया है। विचारके बिना मात्र कुलपरम्परासे त्याग हो वह सच्चा त्याग नहीं, किन्तु यहाँ पर समझकर विचारपूर्वक उन दोषोंको दूर करनेकी बात है। पहले सच्चे देव-गुरुकी पहिचान करके उनकी भक्ति, पूजा, प्रभावना करनी चाहिए; उनके लिये तन, मन, धन इत्यादि खर्च करने पर व्यवहारसे अरहन्तदेवका भक्त कहलाता है, तभी उसके स्थूल मिथ्यात्व छूटता है किन्तु अब तक सूक्ष्म मिथ्यात्व मौजूद है। (क्रमशः) ✻

अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

❋ निश्चय वस्तुस्वरूप ❋

देखो, अब न्याय कहते हैं। वस्तुका जैसा सच्चा स्वरूप है उसका वर्णन करते हैं। वास्तवमें वस्तु अनन्त गुणमय है; उसमें दर्शन–ज्ञान–चारित्र प्रधान हैं। आत्मामें अनन्तगुण होने पर भी उसमें जानना, देखना और परिणमना—इन तीनके कारण आत्मामें वेदन–अनुभव होता है। यहाँ परिणमना.....अर्थात् चारित्रकी पर्यायकी बात है और ज्ञान वह आत्मा है। जाना, देखा और स्थिर हुआ अर्थात् अनुभव हुआ। यह अनुभवप्रकाशकी बात है। वह अनुभव कैसे हो? तो कहते हैं कि ज्ञान–दर्शन–चारित्रकी एकता होनेसे रसास्वादरूप अनुभव होता है।

वस्तु अनन्तगुणका पिण्ड है। परसे तो वस्तु ज्ञात नहीं होती किन्तु विकार या आत्माके अस्तित्व, वस्तुत्व आदि गुणभेदसे भी वस्तु ज्ञात नहीं होती। यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञान–दर्शन लक्षण द्वारा जानने–देखनेके परिणमनसे आत्माका वेदन होता है। यह वस्तु है ऐसा निर्णय कौन करता है? कि—आत्मामें देखने–जाननेरूप परिणमनसे वह वेदन होता है। जिसे निमित्तकी रुचि है वह निमित्तसे पृथक् होनेका पुरुषार्थ नहीं करता।

जो परसे पृथक् हुआ नहीं है और रागसे पृथक् नहीं होता, उसे आत्मामें एकत्वभाव प्रकट नहीं होता। चेतनकी चेतना जाननेमें आए वहाँ सुख प्रकट होता है।

आत्माका वेदन कैसे हो? तो कहते हैं कि कहीं निमित्त और रागमें प्रेम करनेसे वह नहीं होगा, परन्तु चेतनकी चेतना है वह ज्ञान–दर्शन द्वारा ही ख्यालमें आती है। आत्मा परसे तो नहीं परन्तु ज्ञान–दर्शन द्वारा ही ख्यालमें आता है। आत्मा परसे तो नहीं परन्तु ज्ञानके सिवा अन्य गुणोंसे भी ख्यालमें नहीं आता। चेतना द्वारा चेतनसत्ताका निर्णय हुआ; जब ज्ञानमें चेतना ख्यालमें आयी तब चेतनसत्ता है ऐसा निर्णय हुआ। जानने–देखनेवाली वस्तु है, उसके द्वारा सुखका अंश प्रकट हुआ तब चेतनसत्ताका निर्णय हुआ।

आत्मा चेतनसत्तामय है। प्रयोजनभूत क्रिया द्वारा चेतनका वस्तुत्व निश्चित् हुआ; उसके

अर्हन्त पद देव-चक्र हाथ जोड नत किया,
चतुर्थ शुक्लध्यान कर्म नाश मोक्ष वर लिया।७९।

अनन्त गुण परिणमते हैं वह चेतनका द्रव्यत्व है, जाननेमें आता है वह चेतनका प्रमेयत्व है। ऐसी वस्तु है उसका विश्वास किस प्रकार हो? जानने–देखनेके द्वारा चेतनसत्ताका निर्णय होने पर चेतनवस्तुत्व, चेतनद्रव्यत्व, प्रमेयत्वका निर्णय हुआ, प्रदेशत्वको जाना। यह वस्तु ऐसी ही है—ऐसा निर्णय हुआ। दर्शन, ज्ञान और चारित्र जीववस्तुका सर्वस्व है ऐसा कहा है।

अनुभव तो पर्याय है। वह पर्याय दर्शन–ज्ञान और चारित्रकी है। पदार्थका निर्णय परसे तो होता नहीं है, परन्तु व्यवहाररत्नत्रयसे भी वह निर्णय नहीं होता। चैतन्य अखण्ड वस्तु है, उसमें पर्यायके भीतर जितना राग है उसे व्यवहार कहा है। उसके द्वारा निश्चय अखण्ड द्रव्यका निर्णय नहीं होता। दर्शन–ज्ञान–चारित्रकी पर्यायके सिवा अन्य गुणोंसे भी वस्तुका निर्णय नहीं होता वह सिद्ध किया है।

जानने–देखनेमें स्थिरता हुई उसका नाम अनुभव है, वही धर्म है। उसे सामायिक कहो, या प्रौषधतप कहो, उसके सिवा यथार्थ सामायिक–प्रौषध आदि कुछ नहीं होता। द्रव्य अवस्थित है। सत्द्रव्य है ऐसे ही सत्‌गुण है और उसीप्रकार सत्पर्याय भी है। आत्मवस्तु द्रव्य–गुण–पर्यायसे अखण्ड चेतनारूप अनादि–अनन्त वर्तती है। ऐसा शुद्धस्वभाव होने पर भी अनादिसे कर्मके निमित्तसे पर्यायमें अशुद्ध हो रहा है। अज्ञानीको सुखस्वभावकी खबर नहीं है, फिर भी स्वभावसे तो वह भी शुद्धस्वरूप ही है।

देखो, यहाँ चेतनाकी बात कही है। वह चेतना कैसे प्राप्त हो? उसकी बात करते हैं। किसीने एक ज्ञानवान पुरुषसे पूछा कि—हमें शुद्धचेतनकी प्राप्तिका मार्ग बतलाइए। चेतना अपनेमें है उसकी जिसे खबर नहीं है वह दूसरेके पास जाता है। उससे उन पुरुषने कहा कि अमुक पुरुषके पास जाओ। वह दूसरा पुरुष उसे मगरमच्छके पास भेजता है और कहता है कि वह मच्छ तुम्हें शुद्ध चैतन्यकी प्राप्ति कराएगा। वह पुरुष मच्छके पास गया और कहा कि मुझे शुद्धचैतन्यकी प्राप्ति करार्ईए। देखो, अज्ञानी निमित्तमें तथा रागमें आत्माका कल्याण हो जाएगा–ऐसा मानता है, और जगह–जगह शुद्धकी प्राप्तिके लिए भटकता रहता है। उससे मच्छने कहा कि मेरा एक काम कर दो तो मैं भी तुम्हारा काम कर दूँगा। उस पुरुषने कहा कि मैं तुम्हारा काम अवश्य कर दूँगा, आप चिन्ता न करो। तब उस मच्छने कहा कि मैंने इस समुद्रमें बहुत काल व्यतीत किया है, किन्तु प्यासा हूँ, मुझे अभी तक पानी नहीं मिला। इसलिए आप मुझे पानी पिला दीजिए जिससे मेरी प्यास मिट जाए। महान

रागद्वेष नाश आतमशांतिको बढाईया,
शरण जु लेय आपकी वही सुशांति पाईया;

पुरुषोंका काम है कि सबका उपकार करें। प्यास बुझते ही मैं आपको चिदानन्दकी प्रत्यक्ष प्राप्ति करा दूँगा। यह सुनकर वह पुरुष बोला कि आप तो अगाध पानीमें ही रहते हैं और मुझसे पानी पिलानेके लिए कह रहे हो! बड़े आश्चर्यकी बात है! तब मच्छने कहा कि मैं पानीमें हूँ ऐसा तुम मानते हो, तब तुम भी प्रत्यक्ष सच्चिदानन्द हो। आपमें चेतना है तब आपने ऐसा विचार किया है। अब, आप मेरे पास जिस कार्यके लिए आए हो वह तो आप स्वयं ही है; आप स्वयं चिदानन्द हंस हो। जिसप्रकार हंस दूध और पानीको पृथक् करता है, उसीप्रकार राग एवं विकारसे रहित परमेश्वर आप ही हो, आप स्वयं चिदानन्द हंस हो। आप राग और विकारसे रहित परमेश्वर हो, इसलिए शंकाको छोड़िए और ज्ञाता–द्रष्टास्वभावी हुं ऐसा निःशंक अनुभव करो। अनादिसे परसंगमें रहकर भी आत्मा तो ज्योंका त्यों है, वह राग–द्वेष लिप्त हो गया है परन्तु जानने–देखनेका स्वभाव कहीं गया नहीं है, राग–द्वेषमें एकाग्र होनेसे ढँक गया है, उसका परिणमन अन्यथा नहीं हुआ है अर्थात् स्वभावरूप परिणमनकी योग्यताका अभाव नहीं हुआ है। पर्यायमें मलिनता हुई है परन्तु चिदानन्दस्वभाव तो अनादिसे ज्योंका त्यों है।

एकेन्द्रियमें भी स्व–पर प्रकाशक स्वभाव ज्योंका त्यों है, किंचित् भी न्यूनाधिक नहीं हुआ है। अनन्तकालसे संसार दशा है, इसलिए स्वभाव घट गया हो ऐसा नहीं है। दीर्घकाल पूर्व मोक्ष हुआ है, इसलिए उनका द्रव्य कम हो गया हो या बढ़ गया हो ऐसा नहीं है। मात्र भ्रमसे–कल्पनासे अपने स्वरूपको भूल गया है और परको अपना मान रहा है परन्तु उससे त्रैकालिक ज्ञायक अखण्ड चेतनामय स्वभावमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, इसलिए उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता करना वह अनुभव-प्रकाश है। (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ २३ का शेष भाग)

✻ वह ही रागादिविकल्पशून्य ध्यान है।
✻ वह ही निष्कल (अशरीरी) ध्यान है।
✻ वह ही परम स्वास्थ्य है।
✻ वह ही वीतरागपना है।
✻ वह ही परम साम्य है।
✻ वह ही परम एकत्व है।
✻ वह ही परम अभेदज्ञान है।
✻ वह ही परम समरसीभाव है।

इस प्रकार समस्त रागादिविकल्प उपाधिरहित परम आह्लाद एक सुख जिसका लक्षण है ऐसे ध्यानरूप निश्चय मोक्षमार्गके वाचक अन्य भी अनेक नाम परमात्मतत्त्वविद् पुरुषों द्वारा जाननेयोग्य है।

(देखे, द्रव्यसंग्रह गाथा-५६की टीका)

भगवन् शरण्य शांतिनाथ भाव ऐसा है सदा,
दूर हो संसार क्लेश भय न हो मुझे कदा।८०।

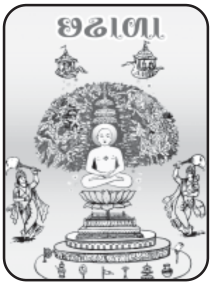

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(तीसरी ढाल, गाथा-१)

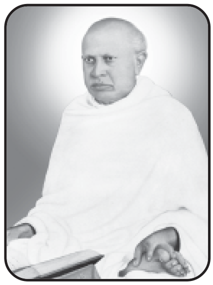

आत्माके हितरूप मोक्षमार्गका वर्णन

✍ शुद्धात्माकी श्रद्धा वह एक ही सम्यग्दर्शन है;

✍ शुद्धात्माका ज्ञान वह एक ही सम्यग्ज्ञान है;

✍ शुद्धात्मामें लीनता वह एक ही सम्यक्चारित्र है।

✍ ऐसा शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप एक ही मोक्षमार्ग है।

✍ व्यवहारके विकल्पोंका उसमें अभाव है।

निश्चयकी भूमिकामें उसके योग्य ही व्यवहार होता है, उसका स्वीकार है, लेकिन उसे सत्य मोक्षमार्गके रूपमें ज्ञान स्वीकार करता नहीं है।

प्रश्न :–जो व्यवहार रत्नत्रय है वह वास्तविक मोक्षमार्ग नहीं, तो उपचारसे उसे मोक्षमार्ग क्यों कहा ?

उत्तर :–क्योंकि निश्चयके साथ उस भूमिकामें ऐसा ही व्यवहार निमित्तरूप होता है, विपरीत होता नहीं है–इस प्रकार उस भूमिकाका ज्ञान करानेके लिये उसमें मोक्षमार्गका उपचार है। जैसे बिल्लीमें बाघका उपचार वह ऐसा सूचित करता है कि बिल्ली स्वयं वास्तविक बाघ नहीं है। वास्तविक बाघ तो उससे अलग है; उसी प्रकार व्यवहारमें मोक्षमार्गका उपचार वह ऐसा सूचित करता है कि व्यवहार स्वयं वास्तविक मोक्षमार्ग नहीं, वास्तविक मोक्षमार्ग उससे अन्य है। 'ज्ञान वह आत्मा' अर्थात् गुणगुणीभेदके विकल्परूप व्यवहार भी मोक्षका साधन हो सकता नहीं, वहाँ अन्य स्थूल रागकी क्या बात ?

✍ मोक्षमार्ग दो नहीं है, एक ही है; वैसे ही—

✍ मोक्षमार्गमें जो सम्यग्दर्शन है वह दो नहीं एक ही है;

✍ मोक्षमार्गमें जो सम्यग्ज्ञान है वह दो नहीं, एक ही है;

✍ मोक्षमार्गमें जो सम्यक्चारित्र है वह दो नहीं, एक ही है।

श्री कुंथुनाथ जिन-स्तुति	जय कुंथुनाथ नृप चक्रधरं, यति हो कुन्थ्वादि दयार्द्र परं;

फिर चाहे उस सम्यग्दर्शनके तीन भेद हो। सम्यग्ज्ञानके पाँच भेद करें और सम्यक्‌चारित्रके पाँच भेद करे लेकिन उन सभीमें स्वद्रव्याश्रयका प्रकार एक ही है; वह दर्शन-ज्ञान-चारित्रका कोई भी प्रकार परद्रव्यके आश्रित नहीं है, अथवा उसमें कहीं भी राग नहीं है।

भगवान आत्मा महान पदार्थ, उसमें अंतर्मुख श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र ही मोक्षमार्ग है; उससे पृथक् कोई अन्य मोक्षमार्ग कहना वह तो वाणीका विलास है–उसका वाच्य निमित्त और राग है; लेकिन मोक्षमार्गका वह वास्तविक-सत्य स्वरूप नहीं है। सत्य मोक्षमार्ग शुद्ध आत्माकी अनुभूतिमें ही समाहित है, वह निर्विकल्प है, कोई विकल्प उसमें नहीं है। ऐसा मोक्षमार्ग चौथे गुणस्थानसे प्रारम्भ हो जाता है। समंतभद्रस्वामीने 'गृहस्थो मोक्षमार्गस्थः' ऐसा कहकर सम्यग्दृष्टि गृहस्थको भी मोक्षमार्गमें माना है। अर्थात् कोई ऐसा कहे कि चौथे-पाँचवें-छठवें गुणस्थानमें मात्र व्यवहार मोक्षमार्ग है और फिर सातवें गुणस्थानसे मात्र निश्चय मोक्षमार्ग है,—तो वह बात यथार्थ नहीं है। चौथे गुणस्थानसे ही दोनों साथमें है, उसमें जितने अंशमें शुद्धता है वह यथार्थ मोक्षमार्ग है और जितना रागादि है वह मोक्षमार्ग नहीं। इस प्रकार सभी पहलुओंसे पहिचानकर सत्य मोक्षमार्गको अंगीकार करना चाहिये।

अहा ! ऐसा सुंदर, स्वाधीन मोक्षमार्ग, वह ही महान सुखका कारण है–ऐसा जानकर बहुमानपूर्वक उनका सेवन कीजीये।

निश्चयसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी व्यारव्या

निराकुल सुखरूप मोक्ष वह आत्माका हित है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह मोक्षका मार्ग है; जीवको स्वयंके हितके लिये ऐसे मोक्षमार्गमें लगना चाहिये–ऐसा प्रथम गाथामें कहा; अब वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अर्थात् क्या ? उसकी व्याख्या दूसरी गाथामें कहते है—(गाथा-२)

परद्रव्यनतैं भिन्न आपमें रुचि, सम्यक्त्व भला है;
आपरूपको जानपनों सो, सम्यक्‌ज्ञान कला है।
आपरूपमें लीन रहे थिर, सम्यक्‌चारित सोई;
अब व्यवहार मोखमग सुनिये, हेतु नियतको होई॥२॥

तुम जन्म-जरा-मरणादि शमन,
शिवहेतु धर्मपथ प्रगट करन।८१।

देखो, आत्माके हितके लिये सत्यार्थ मोक्षमार्गका यह वर्णन है। उसमें प्रथम निश्चय सम्यग्दर्शन है वह परसे भिन्न स्वयंके शुद्धात्माकी रुचिरूप है; आत्माकी रुचिरूप ऐसा सम्यग्दर्शन तो भला है, उत्तम है। आत्माके यथार्थ स्वरूपका जानपना वह सम्यग्ज्ञानरूप वीतरागी कला है; आत्मस्वरूपको जाननेवाला ज्ञान मोक्षका कारण होता है और वह स्वयं निराकुल आनंदरूप है। इस प्रकार स्वयंने आत्माकी रुचि और ज्ञान करके फिर उसमें लीन होकर स्थिर रहना वह सम्यक्चारित्र है। देखो, इसमें राग कहीं पर भी न आया। मोक्षमार्गमें यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों राग बिनाके है।—ऐसे मोक्षमार्गको पहिचानकर उसके उद्यममें नितप्रति लगे रहना चाहिये। इस प्रकार निश्चय मोक्षमार्ग कहा और अब व्यवहार-मोक्षमार्ग–कि जो निश्चयमोक्षमार्गके निमित्तरूप हेतु है उसका कथन आगेके श्लोकमें कहेंगे।

(क्रमशः) ❋

(पृष्ठ ५ का शेष भाग) (प्रवचनसार)

कारण है। बाह्यके पदार्थोंसे संसारसुख हो उस बातका यहाँ निषेध किया गया है।

कुत्ता रोटीका गूंथा हुआ आटा ले गया और पीछा करने पर भी हाथ न लगा तो फिर वापस आकर बोले 'कुत्तेको दान देता हूँ' इस प्रकार यह जीव ज्ञाता-दृष्टा है'–इस प्रकार कोई कहे तो वह बात यथार्थ नहीं है। वह वस्तुका रखनेका अभिप्राय तो है ही। लेकिन हाथमें न आने पर 'ज्ञाता हूँ'–ऐसा कहना वह अज्ञान ही है। जिसने पर पदार्थको रखनेकी इष्टबुद्धि की उसे उसका वियोगमें अनिष्टबुद्धि हुए बिना रहेगी नहीं। वर्तमानमें निश्चित करना चाहिये कि कोई भी परवस्तु इस आत्माकी है ही नहीं। भूत, वर्तमान और भविष्य पर्यायका ज्ञाता ही हूँ–ऐसा निश्चित करे तो ज्ञाता कहा जायेगा। स्वयंको अनुकूल नहीं रहा इसलिये ''ज्ञाता रहे तो ?'' यह प्रश्न ही अज्ञानीका है। वह ज्ञाताको समझता ही नहीं है।

केवली भगवानके ज्ञानमें संपूर्ण लोकालोक जाननेमें आता है लेकिन वह तीनलोकके पदार्थ भगवानके सुखका कारण नहीं है। और अल्पज्ञ दशामें स्वयंके ज्ञानके विकास अनुसार जितने पदार्थ जाननेमें आये हैं वे पदार्थ सुखका कारण नहीं, और वे पदार्थ ठीक-अठीक बुद्धि कराते नहीं है। परपदार्थ इस जीवके सुख-दुःखमें किसी भी प्रकारसे कारणरूप नहीं है, अकिंचित्कर है–ऐसा बतलाकर परपदार्थों परसे संयोग दृष्टि छोड़ने जैसी है और स्वभावदृष्टि करने जैसी है–ऐसा कहा है। (क्रमशः) ❋

तृष्णाग्नि दहत नहि होय शमन,
मन-इष्ट भोगकर होय बढन;

परमात्मध्यानभावना नाममाला

पर्याय स्वयं ध्रुवस्वभावमें एकाग्र होकर स्वयंके परमानंद स्वरूपमें मिलती है, वह मोक्षमार्ग है। उसके अनेक नाम है। द्रव्यसंग्रहमें उसका सुंदर विवेचन किया है। वहाँ कहते हैं कि—सहज शुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभाव परमात्मतत्त्वके सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरणरूप अभेदरत्नत्रयात्मक परमसमाधिमें सर्वप्रदेशमें आह्लादकारी सुखके आस्वादरूप परिणतिसहित, ऐसे निजात्मामें रत-परिणत-तल्लीन-उसमें एकाग्रचित्त-तन्मय होता है वह निश्चयसे परम उत्कृष्ट ध्यान है, उस ध्यानमें स्थित जीवोंको जो वीतराग-परमानंदसुखका अनुभव होता है वह ही निश्चय-मोक्षमार्गका स्वरूप है। उसे ही अन्य पर्यायवाची नामोंसे क्या-क्या कहा जाता है? उसे यहाँ दर्शाते है,— उसका नाम है 'परमात्मध्यानभावना—नाममाला' और यह नाममाला यथासंभव सर्वत्र करनेका कहा है—उनमेंसे कुछ नाम गतांकमें दिये थे अब उससे आगे..

* वह ही आत्मसंविति है।
* वह ही स्वरूप-उपलब्धि है।
* वह ही नित्य-उपलब्धि है।
* वह ही परमसमाधि है।
* वह ही परम आनंद है।
* वह ही नित्य-आनंद है।
* वह ही सहज-आनंद है।
* वह ही सदानंद है।
* वह ही शुद्धात्मपदार्थका अध्ययन है।
* वह ही परम स्वाध्याय है।
* वह ही निश्चयमोक्ष उपाय है।
* वह ही एकाग्रचिंतानिरोध है।
* वह ही परमबोध है।
* वह ही शुद्ध उपयोग है।
* वह ही परम योग है।
* वह ही भूतार्थ है।
* वह ही परमार्थ है।
* वह ही निश्चय पंचाचार है।
* वह ही समयसार है।
* वह ही अध्यात्मसार है।
* वह ही समता आदि छह निश्चय आवश्यकस्वरूप है।
* वह ही अभेदरत्नत्रय स्वरूप है।
* वह ही वीतराग सामायिक है।
* वह ही परम शरण-उत्तम-मंगल है।
* वह ही केवलज्ञान उत्पत्तिका कारण है।
* वह ही सकलकर्मक्षयका कारण है।
* वह ही निश्चय-चतुर्विध आराधना है।
* वह ही परमात्मभावना है।
* वह ही शुद्धात्मभावनासे उपार्जित सुखकी अनुभूतिरूप परमकला है।
* वह ही दिव्य कला है।
* वह ही परम अद्वैत है।
* वह ही परम अमृत है।
* वह ही परम धर्मध्यान है।
* वह ही शुक्लध्यान है।

(शेष देखे पृष्ठ १९ पर)

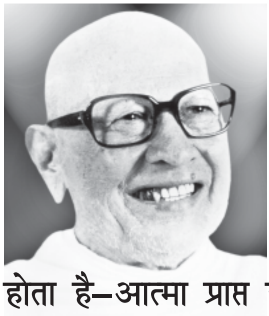

युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न :–उपयोगको कितना अन्दर ले जानेसे आत्माका दर्शन होता है–आत्मा प्राप्त होता है?

उत्तर :–जो उपयोग बाहरमें जाता है, उसे अन्दर स्वमें ले जाना है। उपयोगका स्वमें ले जाना ही अन्दर ले जाना कहा जाता है। उपयोगके स्वमें ढलते ही आत्माका दर्शन होता है।

प्रश्न :–क्या आत्मा और रागका भेदज्ञान करना अशक्य है?

उत्तर :–नहीं, नहीं। यद्यपि आत्मा और रागकी संधि अतिसूक्ष्म है, बहुत दूर्लभ है, दुर्लभ है; तथापि अशक्य तो नहीं। ज्ञानोपयोगको अति सूक्ष्म करने पर वह आत्मा लक्षमें आ सकता है। पंच महाव्रतके परिणाम अथवा शुक्ललेश्यारूप कषायकी मन्दताके परिणाम अतिसूक्ष्म अथवा दुर्लभ नहीं है; किन्तु आत्मा अतिसूक्ष्म है, अतः उपयोगको अतिसूक्ष्म करनेसे आत्मा अनुभवमें आता है।

प्रश्न :–स्वद्रव्यको परद्रव्यसे भिन्न देखो–ऐसा श्रीमद् राजचंद्रजीने कहा है। कृपया इसका कुछ विस्तृत विवेचन कीजिये?

उत्तर :–देह-मन-वाणी तथा स्त्री-पुत्रादि तो परद्रव्य होनेसे भिन्न हैं ही; किन्तु देव-शास्त्र-गुरु भी परद्रव्य होनेसे आत्मासे भिन्न ही हैं–ऐसा देखो। एक द्रव्य अन्य द्रव्यका कुछ भी कर सकता नहीं, क्योंकि प्रत्येक द्रव्यका स्वभाव चमत्कारिक है। एक रजकण दूसरे रजकणका कार्य किंचित्मात्र भी नहीं कर सकता। लकड़ी हाथसे ऊँची उठी नहीं अथवा कलमसे अक्षर लिखे नहीं गये, कारण कि एक द्रव्य अन्य द्रव्यसे भिन्न है। स्वद्रव्य और परद्रव्यको भिन्न-भिन्न देखनेमें द्रव्यकी प्रभुता है।

प्रश्न :–परमात्मा होनेके लिये ज्ञानियोंने शास्त्रोमें क्या कहा है?

उत्तर :–सर्व शास्त्रोंके सारमें ज्ञानियोंने पर और विकारसे भिन्न इस ज्ञानानंद चैतन्यरत्नको ही पहिचाननेके लिये कहा है। पूर्वप्रारब्धानुसार जो संयोग-वियोग होते हैं, वे चैतन्य नहीं और वह प्रारब्ध भी आत्मा नहीं तथा जिस भावसे प्रारब्ध बँधा, वह भाव भी

आत्मा नहीं है। शरीरादि संयोगसे भिन्न–ऐसे चैतन्यस्वरूप भगवान आत्माका भान करे तो परमात्मा बनता है और फिर कभी वह संसारमें अवतरित नहीं होता।

प्रश्न :—आत्मा मात्र जाननेवाला ही है—ऐसा आपने कहा। अब इसमें करनेके लिये रह ही क्या गया है?

उत्तर :—अरे भाई ! इसमें तो अपार करनेके लिये है। देहादि परद्रव्यकी तरफ जो लक्ष जाता है, उस लक्षको जाननेवाला–ऐसा जो अपना आत्मा, उस आत्माको जाननेमें उपयोगको लगाता है। आत्माको जाननेमें तो अनन्त पुरुषार्थ आता है।

प्रश्न :—परपदार्थ बन्धके कारण नहीं है तो उनके संगका निषेध क्यों किया जाता है?

उत्तर :—यद्यपि बन्धके कारण तो जीवके परिणाम ही हैं, बाह्य वस्तु नहीं; तथापि बाह्य वस्तुके आश्रयसे होनेवाले अध्यवसानको छुड़ानेके लिये उसके आश्रयभूत बाह्यवस्तुका निषेध किया जाता है। बाह्यवस्तुके आश्रय बिना अध्यवसान नहीं होते; अतः अध्यवसानका निषेध करनेके लिये बाह्य वस्तुके संगका निषेध करते हैं, उसका लक्ष छुड़ाते हैं।

प्रश्न :—स्वद्रव्य और परद्रव्य क्या है? मोक्षार्थी जीवको किसे अंगीकार करना?

उत्तर :—प्रत्यक्षमें बाह्य और भिन्न दिखनेवाले स्त्री, पुत्र, धन, मकानादि तथा एकक्षेत्रावगाही सम्बन्धवाले शरीर और अष्टकर्म तो परद्रव्य हैं ही, इनके अतिरिक्त जीव-अजीवादि सातों तत्त्वोंके सम्बन्धमें उठनेवाले विकल्प भी पर है तथा इन सात तत्त्वोंके विकल्पोंसे अगोचर जो शुद्ध अभेद आत्मस्वरूप है, वही एक स्वद्रव्य है, वही जीव है और एक वही अंगीकार करनेयोग्य है। शुद्धजीवको अंगीकार करनेसे शुद्धभाव प्रकट होता है। अंगीकार करनेका अर्थ है—उसी शुद्धजीवकी श्रद्धा करना, उसीका ज्ञान करना और उसीमें लीन होना।

प्रश्न :—स्वयं ही अपना ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता है तो अन्य छह द्रव्य ज्ञेय और स्वयं उनका ज्ञाता है; यह ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध छोड़ना अशक्य क्यों कहा?

उत्तर :—छह द्रव्य तो ज्ञेय और स्वयं उनका ज्ञाता है। इस ज्ञेय-ज्ञायकके सम्बन्धको छोड़ना अशक्य कहा है सो वहाँ तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बताया है; किन्तु यहाँ तो स्व-अस्तित्वमें रहनेवाला स्वयं ही ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता है—इसप्रकार निश्चय बतलाकर परका लक्ष छुड़ाया है।

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— *जिज्ञासु महिमा तो ऐसी ही करता है कि गुरुदेव ! आपने ही सब कुछ—सर्वस्व दिया है ?*

समाधान :—गुरुदेव ! आप ही सर्वस्व हो; आपने ही हमें सब कुछ दिया है; आप यहाँ पधारे—आपने मार्ग बतलाया तो हम जागृत हुए; आपने हमें पुरुषार्थ करना सिखाया है;—तदनुसार सब विनयकी भाषा बोलता है, किन्तु अंतरसे समझता है कि करना तो मुझे है। गुरुदेवका परम परम उपकार है ऐसा वह समझता है। हमारी दिशा बदली हो तो आपने ही बदलायी है—ऐसा वह उपकारबुद्धिसे कहता है, उसके शुभभावमें ऐसा ही आता है।

प्रश्न :— *श्री 'समयसार'की ३८वीं गाथामें अप्रतिहतभावकी बात आयी थी। पूज्य गुरुदेवश्री कई बार कहते थे कि—बहिनश्रीके जातिस्मरणज्ञानमें जोड़नी क्षायिककी बात आती थी। तो कृपा करके हमें समझायें कि जोड़नी क्षायिक सम्यक्त्वका अर्थ क्या है ? वह किसे प्रकट होता है ?*

समाधान :—जोड़नी क्षायिक तो उसे प्रकट होता है जिसे अप्रतिहत धारा होती है। शुद्धात्म-साधनाकी विशेष-विशेष पर्यायें जुड़ती जाएँ तो अप्रतिहत धारारूप जोड़नी क्षायिक प्रकट होता है।

मुमुक्षु :—अब भी स्पष्ट नहीं हुआ, इसलिये विशेष स्पष्टता करनेकी कृपा करें।

बहिनश्री :—वह क्षयोपशम (क्षयोपशम सम्यक्त्व) ऐसा अप्रतिहत होता है कि जो गिरता नहीं है। उसकी समस्त पर्यायें अप्रतिहतभावसे प्रकट होती हैं। जोड़नी क्षायिकमें धारा ही ऐसी अप्रतिहतधारासे प्रकट होती है।

प्रश्न :— *पात्र शिष्यके मुख्य लक्षण सम्बन्धी थोड़ा स्पष्टीकरण कीजिये।*

समाधान :—पात्र शिष्यको अंतरसे आत्माकी ही लगन लगी होती है कि 'मुझे एक चैतन्य ही चाहिये, अन्य कुछ नहीं चाहिये।' उसके प्रत्येक कार्यमें आत्माका ही प्रयोजन

श्री धर्मनाथ जिन-स्तुति	तन-ताप-हरण कारण भोगं, इम लख विजविद् तयागे भोगं ।८२।

होता है, अन्य सब प्रयोजन उसे गौण रहते हैं। एक आत्माकी मुख्यता सहित ही उसके सर्व कार्य होते हैं। शुभभावके कार्योंमें भी उसे एक आत्माका प्रयोजन होता है, अन्य कोई बाह्य प्रयोजन नहीं रहता। शुभभावमें देव–शास्त्र–गुरुकी प्रभावना कैसे हो वैसे भाव आते हैं और आत्माका प्रयोजन साथ होता है, अन्य कोई प्रयोजन नहीं होता। लौकिक प्रयोजनसे अत्यन्त न्यारा होता है। उसे तो एक आत्माकी ही लगन लगी है। लौकिकका, बाह्यका या बड़प्पनका कोई प्रयोजन नहीं रहता। 'मेरे आत्माको कैसे लाभ पहुँचे' वह एक ही प्रयोजन आत्मार्थीको होता है। श्री जिनेन्द्रदेव, जिन्होंने साधना प्रकट की है ऐसे उपकारी गुरु, तथा शास्त्रकी प्रभावना कैसे हो ऐसी उसे प्रीति होती है। जिन्होंने आत्माका मार्ग बतलाया, उसकी प्राप्ति हेतु मार्गदर्शन दिया और जिनका परम उपकार है उनकी प्रभावना कैसे हो, वैसा हेतु पात्र शिष्यको होता है, अन्य कोई हेतु नहीं होता। यह पात्र जीवका लक्षण है।

प्रश्न :— *धार्मिक संस्थाके कार्य करनेमें क्या प्रयोजन होना चाहिये ? कार्योंमें भाग लेना या नहीं ?*

समाधान :—धार्मिक कार्योंमें देव–शास्त्र–गुरुकी प्रभावना होती हो, अपनेको उसका विकल्प आता हो, तो उनमें भाग लेते हैं। देव–शास्त्र–गुरुकी प्रभावनार्थ एवं अपने आत्मार्थके लिये उनमें जुड़ते हैं। अन्य कोई प्रयोजन नहीं होता।

प्रश्न :— *उसमें आत्मा ही मुख्य होता है ?*

समाधान :—आत्मा ही मुख्य होता है। मेरे आत्मामें संस्कार कैसे पड़ें, उन संस्कारोंकी दृढ़ता कैसे हो, मैं चैतन्य न्यारा हूँ—ऐसा ही उसका प्रयोजन है। स्वयंको धर्मकी प्रीति है, इसलिये धर्मकी प्रभावना कैसे हो, गुरुदेवकी प्रभावना कैसे हो, गुरुके धर्मकी शोभा कैसे बढ़े, लोग इस मार्गको जानें—ऐसा शुभभावका विकल्प आता है। जिसे अपने स्वभावकी प्रीति है उसे गुरुके बताये हुए मार्गकी तथा गुरुकी भक्ति आये बिना नहीं रहती, इसलिये शुभकार्योंमें जुड़ता है, परंतु उनमें उसका 'हेतु' आत्माका है।

✻ धर्म गुरु है, मित्र है, स्वामी है, बांधव है, हितु है और धर्म ही बिना कारण अनाथोंका प्रीतिपूर्वक रक्षा करनेवाला है। इस प्राणीको धर्मके अतिरिक्त कोई शरण नहीं। *(श्री शुभचंद्राचार्य, ज्ञानार्णव, श्लोक-११)*

बाहर तप दुष्कर तुम पाला,
जिन आतम ध्यान बढे आला;

प्रौढ व्यक्तियोंके लिए जानने योग्य प्रश्न तथा उत्तर

(दिये गये विकल्पोंमेंसे योग्य विकल्प पसंद करके रिक्त स्थानकी पूर्ति किजीये।)

(१) समयसार परमागमके परिशिष्टमें ४७ शक्तियोंका वर्णन .... आचार्यदेवने किया है। (कुंदकुंद, अमृतचंद्र, जयसेन)

(२) विद्युन्माली मेरुपर्वत .... में आया है। (धातकीद्वीप, पुष्करद्वीप, जम्बूद्वीप)

(३) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य एक ही समयमें होते हैं, वह .... अपेक्षासे है। (गुण, पर्याय, द्रव्य)

(४) सासादन गुणस्थानवर्ती जीव .... गुणस्थानमें जाता है। (प्रथम, चौथा, दूसरा)

(५) औदयिक आदि पाँच भावोंमेंसे एकमात्र .... भाव बंधरूप है। (औपशमिक, क्षायोपशमिक, औदयिक)

(६) ज्ञानके पांच भेदमें उपयोगरूप एक समयमें .... ज्ञान होता है। (दो, पांच, एक)

(७) भोगभूमिके जीवोंको .... लिंग होता नहीं है। (नपुंसक, स्त्री, पुरुष)

(८) जिसमें अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण और उदीरणा ये चारों भावोंका अभाव हैं वह .... कर्म है। (निधति, निकाचित, उपशम)

(९) पूज्य गुरुदेवश्री प्रवचनमें मुख्यतया .... विषय पर विशेष जोर देते थें। (कर्म, व्यवहारचारित्र, सम्यग्दर्शन)

(१० पूज्य बहिनश्रीके वचनामृत, बोल ३३१में आता है कि ''कहीं भी रुके बिना ''ज्ञायक हूँ'' ऐसी बारम्बार श्रद्धा और ज्ञानमें निर्णय करनेका प्रयत्न करना .... का चिंतवन करते रहना।'' (ज्ञायक, आत्मा, स्वभाव)

(११) छह प्रकारके आहारमेंसे एकेन्द्रिय जीवको .... होता है। (कर्माहार, तेजाहार, लेपाहार)

(१२) .... गुणस्थान तक कषायका सद्भाव है। (सातवें, ग्यारहवें, दसवें)

(१३) औदयिक क्रोधके भाव जो बुद्धिपूर्वक होते हैं उसे जीवका कहना .... व्यवहारनय है। (उपचरित असद्भूत, अनुपचरित असद्भूत, उपचरित सद्भूत)

(१४) अग्निका उष्ण गुणको सामने देखकर किसीने कहा कि अग्नि उष्ण है यह कथन .... का है। (प्रमाण, नय, निक्षेप)

(१५) केवली भगवानके अतीन्द्रिय ज्ञान और सुखकी भावभीगी धून .... शास्त्रमें आचार्यदेवने की है। (प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार)

(१६) .... विक्रिया ऋद्धिके बलसे पर्वत, पत्थर, वृक्ष आदिके बीचमेंसे आकाशकी तरह गमन किया जा सकता है। (इशित्व, अप्रतिधात, प्राकाम्य)

(१७) जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व यह तीन .... भावके प्रकार है। (औपशमिक, औदयिक, पारिणामिक)

(१८) विकलेन्द्रिय जीवको .... लिंग होता है। (नपुंसक, स्त्री, पुरुष)

(१९) पर्यायार्थिक नय कहो .... नय कहो दोनों उपचारमात्र होनेसे एक ही है। (द्रव्यार्थिक, निश्चय, व्यवहार)

(२०) जिनेन्द्रदेवकी पूजाके दस प्रकारमें चक्रवर्तीओं द्वारा की जानेवाली पूजाको .... पूजा कहा जाता है। (चतुर्मुख, महा, इन्द्रध्वज)

प्रौढके लिये दिये गये प्रश्नोंके उत्तर

(१) अमृतचंद्र	(६) एक	(११) लेपाहार	(१६) अप्रतिघात
(२) पुष्कर द्वीप	(७) नपुंसक	(१२) दसवें	(१७) पारिणामिक
(३) पर्याय	(८) निकाचित	(१३) उपचरित असद्भुत	(१८) नपुंसक
(४) प्रथम	(९) सम्यग्दर्शन	(१४) नय	(१९) व्यवहार
(५) औदयिक	(१०) ज्ञायक	(१५) प्रवचनसार	(२०) चतुर्मुख

बालकोंके लिये दिये गये प्रश्नोंके उत्तर

१) चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन	(६) तालेकी - ज्ञायक	(१३) असंख्य
(२) काल	(७) पैतालिस लाख	(१४) निगोद
(३) श्री सुबाहु	(८) अनंत	(१५) निगोद
(४) अभाव	(९) लोकके	(१६) ६
(५) धातकी विदेह	(१०) बावीस	(१७) लेश्या
	(११) पुष्प	(१८) स्वर्णभद्र
	(१२) असंख्य	(१९) लोभ
		(२०) माघ-चैत्र-भाद्रपद

छोटे बच्चोंके लिए प्रश्नोत्तर

(रिक्त स्थानकी पूर्ति किजीये।)

(१) दर्शन उपयोग के चार भेद (१) .... (२) ....
(३) .... (४) .... हैं।

(२) एक परमाणु जितना छोटा .... द्रव्य है।

(३) विदेहक्षेत्रके २० तीर्थंकरमेंसे चौथे तीर्थंकरका नाम .... है।

(४) भवके .... के लिए यह भव है।

(५) पूज्य गुरुदेवश्री भविष्यमें .... क्षेत्रमें तीर्थंकर होंगे।

(६) सभी .... की चाबी एक .... का अभ्यास करना।

(७) सिद्धशिला .... योजन विस्तारवाली है।

(८) सिद्धकी संख्या .... है।

(९) सिद्ध भगवान .... अग्रभाग पर स्थित है।

(१०) दहींवडा .... प्रकारके अभक्ष्यमें आता है।

(११) समवसरणकी तीसरी भूमिका नाम .... वाटिका है।

(१२) .... सम्यग्दृष्टि नारकी है।

(१३) सम्यग्दृष्टि जीवोंकी संख्या .... है।

(१४) सातवीं नरकके नीचे .... के जीव रहते हैं।

(१५) वेदनकी अपेक्षासे नरकके नारकीसे .... जीव ज्यादा दुःखी है।

(१६) संख्या अपेक्षासे पर्याप्ति .... होती है ।

(१७) कषायसे अनुरंजित योगको .... कहते हैं ।

(१८) पारसनाथ भगवान सम्मेदशिखरकी .... कूटसे मोक्षको प्राप्त हुए हैं।

(१९) शौचधर्म .... कषायके अभावमें प्रगट होता है।

(२०) सालमें तीन बार पर्युषण पर्व (१) .... (२) ....
(३) .... महिनेमें आते हैं।

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-१५ से ६-३५ : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप

सुबह : ८-३० से ९-३० : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१८वीं बारका) सीडी प्रवचन

दोपहर : ३-०० से ४-०० : श्री नियमसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन

दोपहर : ४-०० से ४-३० : श्री जिनेन्द्र भक्ति

रात्रि : ८-०० से ९-०० : श्री पुरुषार्थसिद्धि उपाय पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

वैराग्य समाचार

वढवाण निवासी (वर्तमानमें विलेपार्ला-मुंबई) श्री अनंतराय अमुलखभाई शेठ (उम्र ९०)का दि. ६-५-२०२५ के दिन देह परिवर्तन हो गया है। उन्होंने वर्षों तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेन द्वारा प्रकाशित तत्त्वज्ञानका रसपान करके आत्मसाधना की थी। जैनधर्मके प्रचार-प्रसारमें जीवन अर्पित किया था। शुद्धात्म आराधक, वीतराग देव-शास्त्र-गुरु, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, पूज्य भगवती चंपाबेन तथा सुवर्णपुरी-सोनगढके अनन्य भक्तरत्न, जिनशासनके अग्रगण्य प्रभावक सौम्यपरिणामी साधर्मी वात्सल्य संपन्न, सत्संग-स्वाध्याय-तत्त्वप्रेमी, अनेकानेक जिनशासनकी प्रभावनामें कार्यरत, संस्थाके संस्थापक-आधारस्तंभ-अध्यक्ष-ट्रस्टी ऐसे उत्तमोत्तम मुमुक्षु श्री अनंतराय अमुलखभाई शेठकी कमीका अहेसास होता रहेगा।

(दिन प्रतिदिन बननेवाले देहविलयके क्षणभंगुर प्रसंगोंको सुनकर बैराग्य भरे शब्दोंमें पूज्य गुरुदेवश्री कहते हैं कि—) हे भाई! यह देह तो क्षणमें छूट जायेगी। देहका संयोग तो वियोगजनित ही है। जिस समय आयुष्यकी स्थिति पूर्ण होनी है, उस समय तेरे कोटि उपाय भी तुझे बचानेको समर्थ नहीं है। तू लाख रुपये खर्च कर या करोड़ खर्च, चाहे तो विलायतसे डॉक्टर ला, परन्तु यह सब छोड़कर तुझे जाना पड़ेगा। देहविलयकी ऐसी नियत स्थितिको जानकर, वह स्थिति आ पड़े, उससे पहले तू चेत जा। तेरे आत्माको चौरासीके चक्कुरमेंसे बचा ले। आँख बन्द होनेसे पहले जागृत हो। आँख बन्द होनेके पश्चात् कहाँ जायेगा, इसकी तुझे खबर है? वहाँ कौन तेरा भाव पूछनेवाला होगा?—तो यहाँ, लोग ऐसा कहेंगे और समाज ऐसा कहेगा, ऐसे मोहके भ्रमजालमें फँसकर तेरे आत्माको किसलिए परिभ्रमण करा रहा है?

—पूज्य गुरुदेवश्री

श्री बृहद् मुंबई दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा

अध्यात्मतीर्थ श्री सुवर्णपुरीमें विविध आनंदोल्लास सह संपन्न

परम उपकारी श्री कहान गुरुदेवका महामंगलकारी १३६वाँ जन्मोत्सव

पंचाह्निक आयोजन

स्वानुभवमुद्रित, अध्यात्मयुगस्रष्टा, द्रव्य स्वतंत्रताकी घोषणा करनेवाले पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका १३६वाँ आनंदकारी वार्षिक मंगल जन्मोत्सव उनकी पवित्र साधनाभूमि अध्यातम अतिशयक्षेत्र स्वानुभूतितीर्थ श्री सुवर्णपुरी (सोनगढ)में ता. २४-४-२०२५ से २९-४-२०२५तक पंचाह्निक, गुरु-महिमाद्योतक समारोहपूर्वक श्री बृहद् मुंबई दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा मनाया गया।

श्री तीर्थमंडल पूजन विधानका आयोजन

इस महोत्सवमें तीर्थमंडल पूजन-विधानका आयोजन किया गया था। यह विधान हेतु स्वाध्यायमंदिरकी पूर्व दिशामें एक विशाल पूजन मंडप (डोम) बनाया गया था। जिसमें चार सिद्धक्षेत्र एवं अन्य तीर्थक्षेत्रोंकी कृत्रिम रचना की गई थी। इस प्रसंग पर विधिविधान अध्यक्ष श्री सीमंधर भगवान, विधि साक्षी श्री आदिनाथ भगवान, श्री नेमिनाथ भगवान, श्री महावीर भगवान तथा श्री धातकी विदेस्थ भावी तीर्थंकर ऐसे पांच भगवानको भक्तिभाव सह प्रतिदिन पूजन मंडपमें लाया जाता था पूजन पश्चात् पुनः भगवानको मूल स्थान पर विराजमान किये जाते थे। यह पूजन विधानमें मुमुक्षुओंने सिद्धक्षेत्र तथा तीर्थक्षेत्रसे मुक्तिप्राप्त भगवंतोंकी पूजन करके भाववंदना की थी।

उत्सवका दैनिक कार्यक्रम

विभिन्न साज-सज्जासे विभूषित मनोहर डोम मंडपमें क्रमशः प्रातः पूज्य गुरुदेवश्री, पूज्य बहिनश्री मांगलिक, सुवर्णपुरी जयमाला, पश्चात् पूज्य बहिनश्रीकी स्वानुभव निर्झरित तत्त्वचर्चा, ७-४५ से ८-४५ तीर्थमंडल पूजन विधान, पूज्य गुरुदेवश्रीका श्री समयसारजी पर सीडी प्रवचन, गुरुभक्ति, प्रासंगिक उद्घोषणाएँ, विद्वान द्वारा धार्मिक शिक्षणवर्ग, दोपहरमें पूज्य गुरुदेवश्रीका योगसार शास्त्र पर प्रवचन, जिनेन्द्र भक्ति, धार्मिक शिक्षण वर्ग, शामको सांजीभक्ति, रात्रिको पूज्य गुरुदेवश्रीका श्री पुरुषार्थसिद्धिउपाय पर प्रवचन पश्चात् सांस्कृतिक कार्यक्रम इस प्रकार दैनिक कार्यक्रम चलते थे। पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन एल.ई.डी स्क्रीन पर रखे जाते थे। सांजी भक्तिमें प्रतिदिन भजनमंडली द्वारा गुरुभक्ति और विभिन्न महिला मंडलकी बहिनों द्वारा गरबो (भक्तिनृत्य) द्वारा अपनी भक्तिको दर्शाते थे।

सांस्कृतिक कार्यक्रममें प्रथम दिन पूज्य गुरुदेवश्रीके जीवनचरित्रके फिल्मका अंश दर्शाये थे। दूसरे दिन स्वाध्यामंदिरकी रचना किसप्रकार हुई उसको दर्शाता हुआ नाटक दर्शाया था। तीसरे दिन ''गुरुदेवश्री जीवनके यादगार प्रसंग''को ब्र. कोकिलाबेन द्वारा पूज्य गुरुदेवश्रीके जीवनके विविध प्रसंगोंका भाववाही वर्णन किया उनके वक्तव्यको मुमुक्षुओंने मंत्रमुग्ध होकर सुना था। उत्सवके चौथे दिन मुंबई मंडल द्वारा श्री पद्मपुराण भाग-२ दर्शाया गया जिसमें सीताजीकी आर्यिका दीक्षा पश्चात् देवोंको कौतुकवश राम-लक्ष्मणके स्नेहकी परीक्षा लेने हेतु महलमें रामचंद्रजीकी मृत्यु जैसा वातावरण करते है और श्रीरामकी मृत्युका समाचार सुनते ही लक्ष्मणकी तत्काल मृत्यु हो जाती है तत्पश्चात् रामचंद्रजीकी दशा, अयोध्या पर आक्रमण, लव-कुशकी दीक्षा, सेनापति व जटायुके जीव द्वारा श्रीरामचंद्रजीको उद्बोधन, रामचंद्रजीकी दीक्षा पश्चात् मुनि श्रीरामकी सीताजी द्वारा परीक्षा

करना आदि वैराग्य, तत्त्वबोधप्रेरक संवाद द्वारा और साउन्ड, आकर्षक वेषभूषा और लाईटींग इफेक्टके साथ अति भव्यता सह दर्शाया गया था। धार्मिक शिक्षणवर्गमें श्री सुभाषभाई शेठ, श्री देवेन्द्रजी बिजोलिया, श्री नीतिनभाई शेठ, श्री अतुलभाई कामादार, श्री तेजसभाई गाठाणी द्वारा अध्यापन किया गया था।

भव्य रथोत्सव तथा श्री कहानकुंवर-पालनाझूलन

वार्षिक गुरु-जन्मोत्सवके हर्षोपलक्षमें दि. २८-४-२०२५ के दिन दोपहरको प्रवचन पश्चात् 'धातकी विदेहके भावी-तीर्थंकरदेव'की रथयात्राका आयोजन किया गया था। इस रथयात्रामें विभिन्न चित्रपट, गुरुदेवश्रीका स्टेच्यु, जिनवाणी सहित बगीओं और सुंदर सजावटके साथ 'कहानकुंवर पालनाझूलन'का अति मनोहर फ्लोट सभीका गुरुभक्तिभीगा चित्त अपनी ओर केन्द्रित करता था।

गुरु-जन्मोत्सव : वैशाख द्वितीया

गुरु जन्मजयंतिके वार्षिक मंगल दिन पर प्रातः देवशास्त्रगुरु दर्शन तथा पूज्य गुरुदेवश्रीका उमरालासे–गारियाधार–पालेज–दामनगर–राजकोट-स्टार ऑफ इन्डिया–स्वाध्यायमंदिर आगमन जिसे भक्तिभावपूर्वक दर्शानेमें आया था। पश्चात् बहिनश्रीकी विडियो तत्त्वचर्चा। तीर्थमंडल विधान समापन, सभामंडपमें गुरुदेवश्रीका प्रवचन, प्रासंगिक घोषणाएँ पश्चात् गुरुदेवश्रीकी मंगल जन्म बधाईका कार्यक्रम रखा गया था। जिसमें पूज्य गुरुदेवश्रीको विमान द्वारा भक्तिपूर्वक स्टेज पर लाया गया बादमें पूज्य बहिनश्रीकी गुरु जन्मवधाई विडियो तत्पश्चात् प्रथम, द्वितीय, तृतीय लाभार्थी परिवारजनोंने प्रथम जन्मबधाई की। पश्चात् सभी भक्तजनोंने अंतरके उल्लास सह गुरुदेवश्रीकी बधाई की थी। इस प्रसंग पर भजनमंडलीने मधुर गुरुजन्मके भक्तिगीतोंसे वातावरणको भक्तिमय कर दिया था।

उत्सवके चौथे दिन प्रवचन पश्चात् प्रारम्भिक उद्बोधनमें ट्रस्टीश्री द्वारा श्रीमद्जीके १४३ वर्ष पूर्व लिखित मोक्षमालाके शिक्षापाठ के भागका उद्बोधनको याद करते हुए कहा कि हमारा कितना पुण्य होगा कि हमें कहानगुरु जैसे गुरु मिले, गुरुदेवश्रीका प्रत्युपकार करनेके लिये कोई शब्द ही नहीं है। गुरुदेवश्रीके समय विश्वके क्या हालात थे, उस समय उन्होंने जो धर्मप्रभावना की है वह कोई अपूर्व अद्भुत कार्य है। आज जैनोंमें जो कोई मत-मतांतर हुए है वह मात्र क्रियाको लेकर हुए है, लोगोंका तत्त्वकी ओरसे ज्ञान विमुख हुआ है, लोगोंको तत्त्वमें रुचि नहीं है, नव तत्त्वोंका अभ्यास नहीं है। आप जो क्रियाकी ओर गये हो उसमेंसे तत्त्व पर आईये, सात तत्त्वोंका चिंतवन किजीये। गुरुदेवश्रीने इस भूमि पर तत्त्वके प्रपात बहाये। समयसारकी प्रसिद्धि हुई हो तो यह सोनगढ, सोनगढ अर्थात् कहान गुरुदेव, सोनगढ अर्थात् कानजीस्वामी एक पर्याय बन चूके है। अभी जो अपना स्वाध्याय और पाठशालाएँ चल रही है उसमें महानगुरु कानजीस्वामी ही है। उन्होंने कभी भी क्रिया पर जोर नहीं दिया, मात्र तत्त्वको पहिचानों, भगवान आत्माको जानो यह ही सबके मगजमें बिठाया कि स्वाध्याय ही आत्माकी खुराक है। गुरुवरको श्रुतकी लब्धि, ज्ञानकी लब्धि जिनका वर्णनके लिये कोई शब्द नहीं है। उनकी वाणी जो निकलती थी वह सहजतासे, आत्मअनुभवमेंसे निकलती थी। उन्होंने हमारे पर महान महान उपकार किया है। हमने भी महान पुण्य किये होंगे कि ऐसे गुरु हमें मिले। हम भी अपना स्वाध्यायको बढ़ाये वह ही गुरुके प्रति अर्पणता और वह ही भावना होनी चाहिये।

कहान पुष्प परिवार द्वारा आयोजित बाल शिविरने २४ वर्ष पूर्ण करके २५ वर्षमें प्रवेश कर रही है उस सम्बन्धमें कहान पुष्प परिवारके कार्यकर्ताओं द्वारा बालशिविरो, ओनलाईन पाठशालाएँ और प्रत्येक शहरमें

शिविर आयोजन सम्बन्धि माहितिसे अवगत कराया था।

कहानगुरु जनकल्याण ट्रस्ट द्वारा जो दवाखाना(चिकित्सालय) चल रहा है उस सम्बन्धमें ट्रस्टी द्वारा संक्षेपमें जानकारी दी गई थी। इसमें दान देनेवालेको ८०सी का लाभ मिलता है।

आगामी २०२६के तीनों प्रसंग साउथ और नोर्थ झोन द्वारा मनानेकी घोषणा की थी।

कहानगुरु जन्मोत्सवके इस महोत्सवको भव्य और अविस्मरमणीय बनाने हेतु आयोजक श्री बृहद् मुंबई दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडलके कार्यकरोंने बहुत परिश्रम किया था। समागत महेमानोंको आवास और भोजन व्यवस्थामें संतोषका अनुभव हुआ था। श्री बृहद् मुंबई दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडलके कार्यकरोंका उत्साह प्रशंसनीय था।

रत्नमय अक्षरोंसे स्वर्णपत्र पर अंकित श्री समयसारजी जिनवाणी माताकी भेंट तथा जिनवाणी भवन बनानेकी घोषणा

बनावुं पत्र कुंदनना, रत्नोना अक्षरो लखी,
तथापि कुंदसूत्रोना अंकाये मूल्य ना कदी.

पंडितजीकी श्री समयसारजीकी स्तुतिकी अंतिम पद्यको मूर्तरूप सार्थक करता हुआ एक प्रसंग पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीकी १३६वीं जन्मजयंती पर बन गया। दादर-मुंबई निवासी श्री राजेशभाई मनहरभाई संघवी परिवार द्वारा कुंदनके पत्र पर अंकित श्री समयसारजी जिनवाणी माता ट्रस्टको भेट स्वरूप अर्पण किया गया। यह जिनवाणी १८' X २३' इंचके स्वर्णपत्र पर दो लाख बीस हजार रत्नोंसे आलेखन किया गया। जिसमें श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित श्री समयसार शास्त्रकी पंडित श्री हिंमतलाल जेठालाल शाह द्वारा अनुवादित गुजराती गाथाओंको उत्कीर्ण किया गया है। यह समयसार चार स्वर्णपत्रका है। इसका निर्माण हेतु संघवी परिवार, उनके मित्र और Walking Tree कंपनी द्वारा पीछले कई वर्षोंसे अथाक महेनत की है।

यह भेंटसे प्रसन्न होकर तथा तीर्थंकर भगवंतोंकी निष्कारण करुणासे तथा गणधर और आचार्यों द्वारा रचित और प्रत्यक्ष उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा पूज्य भगवती माता द्वारा उपदेशित जिनवाणी माताका संवर्धन तथा स्वाध्याय करनेकी भावनासे प्रेरित होकर श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट सोनगढके ट्रस्टीओं द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीकी १३६वीं मंगल जन्मजयंतिके अवसर पर अति आधुनिक जिनवाणी भवनकी रचनाका संकल्प किया है जिसकी विस्तृत जानकारी आगामी पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी जन्मजयंति प्रसंग पर घोषित की जायेगी।

सीमंधर मुखसे फूल खिरे,
उसकी कुंदकुंद गूंथे माला रे,
जिनजीकी वाणी भली रे....

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्‌गार

● जब चित्तका संग सर्वथा छूट जाता है तब स्वभाव की पूर्णता प्राप्त हुए बिना नहीं रहती। चित्त-संगके विलय से ही परमात्मा साध्य है। अंतर्जल्प-विकल्प का छूट जाना ही साधकदशा है तथा परमात्मदशा साध्य है। ६९०।

● जब तक वस्त्रका एक धागा रखनेका भी भाव है तब तक मुनित्वभाव नहीं आ सकता। मुनिपना आ जाए व वस्त्र रखनेका भाव भी आता हो - ऐसा कभी नहीं हो सकता। ६९१।

● आत्मा तथा अन्य तत्त्वों की विपरीत-दृष्टि ही संसार की साधक है। राग तो राग है, स्वभाव सो स्वभाव है, निमित्त तो निमित्त है - जो ऐसे स्वतंत्र-तत्त्व की रुचि नहीं करता; व पुण्य से धर्म मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है - इसका फल संसार में रुलना है।६९२।

● पूर्णभाव प्रकट होनेके पश्चात् केवलज्ञान व केवलदर्शन क्रमशः उपयोगरूप हों - ऐसा नहीं होता। जो जीव, केवलज्ञान व केवलदर्शनका क्रमपूर्वक उपयोगरूप होना मानता है उसे सम्यक्‌भाव ही प्रकट नहीं हुआ। ६९३।

● गुणों पर आवरण नहीं है और उनमें न्युनता भी नहीं है; प्रत्येक गुणमें ऐसी शक्ति है। अस्तित्व-वस्तुत्व-कर्ता-कर्म-करण आदि गुणोंकी सामर्थ्य ऐसी है कि जिससे वस्तु न तो आवृत हो और न ही अपूर्ण - इस प्रकार निर्णय करे तभी गुण-जाति निर्णित हुयी कहलाए। ऐसी शक्ति प्रत्येक गुणमें है। ऐसा सम्यक्-भाव साधक है तथा वस्तु-जाति सिद्ध होना सो साध्य है। ६९४।

● यह चित्तके संगरहित, ज्ञान व आनन्द परिणतिकी बात है। द्रव्य-मनके संगपूर्वक दया-दानादिकी वृति उठना ही बंधका कारण है। आत्माका संग तो बंधके अभावका कारण है। "मैं ज्ञानानन्द हूँ" - ऐसे अंतरस्वभावके संग से शुद्धोपयोग होता है, दया-दान अथवा भगवानके संग से शुद्धोपयोग नहीं होता। शुद्धोपयोग साधन है व उसका कार्य (साध्य) परमात्मतत्त्व है। त्रिकाली-द्रव्यके संगसे शुद्धोपयोग होता है। देव-गुरु-शास्त्रके संग से भी शुद्धोपयोग नहीं होता। ६९५।

● धर्म के प्रसंग में धन का लोभ करे, देव-गुरु-शास्त्र के लिये धनका संकोच करे -तो वह अनन्तानुबंधी का लोभ है। ६९७।

आत्मधर्म
जून २०२५
अंक-१०, वर्ष १९

Posted at Songadh PO
Publish on 5-6-2025
Posted on 5-6-2025

Registered Regn. No. BVR-368/2024-2026
Renewed upto 31-12-2026
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org